आत्म दर्शन

अध्यात्म प्रेमी श्रीमान् सेठ लालचन्द्र जी जौहरी काशी के
कर कमलों में।

मान्यवर जौंहरी जी !

बनारस आने के प्रथम दिन से ही मैं आपकी जीवन झाँकी बड़े ग़ौर से देखता आ रहा हूँ ! आपकी भगवद्भक्ति, अध्यात्मप्रेम, धार्मिक कार्य्यों में सतत लगन आदि ऐसे गुण हैं जिनसे मेरी आत्मा में आपके प्रति अमिट श्रद्धा हो गई है।

आपके परामर्श और हार्दिक सहयोग से बनारस में पढ़ने वाले जैन छात्रों के लिये धर्म शिक्षण और उनके लिये 'सन्मति जैन निकेतन' के निर्माण में हमारी 'सन्मति ज्ञान प्रचारक जैन समिति' को बहुत बड़ा बल प्राप्त हुआ है। अतः अपने परम सहयोगी मित्र का आभार प्रदर्शन करने, यह 'आत्मदर्शन का प्रथम भाग' आप के करकमलों में शादर समर्पण कर रहा हूँ।

आपका स्नेही—

पन्नालाल धर्मालंकार

प्रकाशकीय

प्रिय सहकर्मी बन्धुओ ! तथा मनीषियो ! यह पुस्तक मेरे पूज्य पिता जी ने मेरे जैसे धार्मिक-ज्ञानशून्य छात्रों को ध्यान में रख, मेरे अनुरोध से लिख देने की कृपा की है। पुस्तक पढ़कर मेरा हृदय इतना प्रभावित हुआ, कि अपने सहकर्मी छात्र मित्रों को बताने का लोभ संवरण न कर सका। अतः शीघ्रता में कतिपय आवश्यक चित्रों में से दो एक चित्र न दे सका।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक हमारे साथियों के चरित निर्माण में बड़ी मदद पहुँचावेगी।

मैं शिक्षा विभाग के अधिकारियों से नम्र निवेदन करूँगा, कि वे यू०पी० के सार्वजनिक पुस्तकालयों के लिये इसे स्वीकृत कर, हमारे बन्धुओं के कर कमलों में शिक्षाप्रद एवं चरित निर्मायक रेखा चित्रोंकी पहुंचाने की कृपा करेंगे।

तथा हाई स्कूल के संचालकों से निवेदन करता हूं कि वे इस पुस्तक की पांचवी या छठवीं कक्षा में सदाचार शिक्षण के लिये स्वीकृत कर नागरिकता की नीव, बालकों के हृदय में प्रस्थापन करने की सामग्री प्रदान करेंगे। यदि आप लोगों ने प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम भाग को अपनाया, तो ऐसे ऐसे ३ भाग जल्दी से जल्दी आपकी सेवा में उपस्थित करूँगा। आशा है आप लोग मेरी इस नम्र प्रार्थना पर अवश्य ध्यान देंगे।

आपका—नम्र सेवक

विमल कुमार पंचरत्न

दो शब्द

चिरकाल से मेरी हार्दिक इच्छा थी, कि बच्चों को धार्मिक ज्ञान कराने के लिये कोई ऐसी पुस्तक लिखूँ, जिसे बच्चे चाव से पढ़ें और आसानी से धर्म की मौलिक रूपरेखा उनके कोमल हृदयों पर अङ्कित हो जाय। एक दिन मेरे बच्चे ने बड़ा अनुरोध किया। अतः यह विचार उसके स्नेहवश झटिति कार्यरूप में परिणत करना पड़ा। प्रस्तुत पुस्तक, यदि यह भावना साकार बना सकी, तो मुझे सीमातीत प्रसन्नता होगी। मैं अपने अध्यापक मित्रों से सानुरोध निवेदन करता हूँ, कि उन्हें पुस्तक की भाषा या भाव में कुछ वक्तव्य हो, या सुधार की दृष्टि से कुछ संशोधन आवश्यक प्रतीत हों, तो कृपया सूचित करके आभारी बनावें। बालकों की हितचिन्तना को ध्यान में रख, उन सारे परामर्शों को सादर स्वीकृत करूँगा, तथा अगले संस्करण में यथासाध्य परिमार्जन करने की चेष्टा करूँगा।

इस छात्रोपयोगी पुस्तक को शीघ्र प्रकाशित करने में मुझे मेरे परम स्नेही मित्र श्रीमान् सेठ लालचन्द्र जी जौंहरी ने अपूर्व संवल दिया है। अतः मैं ने यह प्रकाशन अपने चिर मित्र को समर्पण करने में आत्मतोष का पूर्ण अनुभव किया है।

पन्नालाल धर्मालङ्कार
हिन्दू विश्वविद्यालय,
बनारस

आश्विन शुक्ला २
सं० २०००

विषय तालिका

चित्र-सूची

आत्म दर्शन

(प्रथम भाग)

ईश वन्दना १

णमो अरहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आइरीयाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व साहूणं

अरहंत मंगलं, सिद्धमंगलं साहू मंगलं
केवलिपण्णतो धम्मो मंगलं

अरहंत लोगुत्तमा, सिद्धलोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा,
केवलिपण्णतो धम्मो लोगुत्तमा

अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि
साहू सरणं पव्वज्जामि [illegible]वलिपण्णतं
धम्मं सरणं पव्वज्जामि

—:(०):—

माता और पुत्र २

माता–बेटा श्रीचन्द्र! उठो, प्रातःकाल हो गया।

श्रीचन्द्र–माँ! मैं तो बड़ी देर से उठ गया,

माता–अब तक क्या कर रहे थे बेटा!

श्रीचन्द्र–आप ने कल रात्रि में कहा था कि प्रातःकाल उठकर ईश-वन्दना किया करो, वही तो मैं कर रहा था। किन्तु माता जी! ये अरहंत कौन थे जिनको—'णमो अरहंताणं'–कहकर नमस्कार किया गया है।

माता–बेटा! यह वे महापुरुष थे जिन्होंने योग-साधन कर अपना पूरा विकास कर लिया था।

श्रीचन्द्र–माँ! महापुरुष किसे कहते हैं?

माता–जो अपने स्वरूप को समझ कर संसार से मोह-ममता छोड़ देते हैं और एकान्त में जाकर अपनी खोज में लग जाते हैं।

श्रीचन्द्र–अरी माँ! अपना स्वरूप तो दर्पण में देखने से ही मालूम हो जाता है; फिर एकान्त क्या बला है?

माता–(हँसकर)–अरे बावले! दर्पण में तो शरीर का रूप दीखता है। आत्मा को दिखाना दर्पण का काम नहीं है। इसलिये महापुरुष जहाँ संसार की कोई उलझन

न हो, ऐसे स्थान विशेष में जाते हैं जहाँ सिर्फ एक शान्ति ही अन्त-धर्म हो, उसे एकान्त कहते हैं।

श्रीचन्द्र-मैया! वे चाहे जहाँ जाते हों; पर तू तो आज मुझे उलझा रही है।

माता-कैसे? मैं तो तेरे सवाल का केवल जवाब देती हूँ। क्या इसी को उलझाना कहते हैं?

श्रीचन्द्र-नहीं अम्मा! जब मैं एक सवाल करता हूँ तो तूँ ऐसा जवाब देती है कि उसमें मुझे फिर नया सवाल खड़ा हो जाता है। मैंने पूछा—एकान्त किसे कहते हैं, तो तू कहती है कि जहाँ एक ही धर्म हो। तो ये धर्म क्या बला हैं और यह एक है? कि अनेक?

माता-(श्रीचन्द्र के मस्तक पर हाथ रख) बेटा श्रीचन्द्र! अब तू पाँचवीं कक्षा में पढ़ने लगा है इसलिये समझदार हो चला है; अब तेरी प्रत्येक नई चीज जानने की इच्छा हो गई है। धीरे धीरे तू जब और ज्यादा समझ पकड़ेगा; तो कुछ बातें खुद समझेगा, तथा कुछ हम लोगों से समझेगा, हाँ! तो मैं बताऊँ धर्म क्या चीज़ है, सुन! संसार में जितनी वस्तुएँ हैं उन सबमें धर्म रहते हैं। जिस चीज़ में धर्म नहीं है वह कोई चीज ही नहीं; जैसे आकाश के फूल की सुगंध। न तो आकाश में फूल लगते हैं, न उनमें कोई गन्ध है, फूल एक वस्तु है और उसमें रहने वाली

सुगंध उसका स्वभाव है। स्वभाव का दूसरा नाम धर्म है। जैसे तेरा स्वभाव जानना देखना है। तेरे शरीर का स्वभाव मोटा, पतला, हलका भारी, चिकना, रूखा, काला, गोरा, ठंडा, गरम, ताकतवर कमजोर, बढ़ना-घटना आदि हैं।

श्रीचन्द्र—अम्मा! तो इस तरह से तो संसार में जितने पदार्थ हैं उन सबमें अलग-अलग धर्म होंगे। तो फिर धर्म क्या जगह जगह लुढ़कता फिरता है।

माता—बेटा! इस संसार के प्रत्येक पदार्थ में नाना धर्म होते हैं। धर्म लुढ़कता नहीं; बल्कि तू यह जान ले, कि धर्म, वस्तुओं के अपने स्वभाव हैं और वे उनमें अपने आप होते हैं। जैसे अग्नि में तू देख ले, कितने स्वभाव होते हैं। जब हम लोगों को ठंड लगती है तब हम अग्नि को अँगीठी में रख कर तापने लगते हैं। तब अग्नि का स्वभाव शीत-वारण करना है। जब चाय या दूध पकाना होता है तब उसी अँगीठी पर धर देते हैं, अग्नि उसे गरम कर देती है, चाय पका देती है। अतः अग्नि में दूसरा धर्म पकाने वाला भी है और रात्रि में जब अँधेरा हो जाता है तब उसी अग्नि से दिया जला लेते हैं उससे उजेला हो जाता है इस तरह अग्नि का तीसरा धर्म प्रकाश भी है। और जब अँगीठी में से आगी का एक टुकड़ा कपड़े पर पड़ जाता है तो वह कपड़े को जला देता है; अतः अग्नि का एक धर्म जलाना भी

है। इसी तरह प्रत्येक पदार्थ का हाल है। सब में इसी तरह नाना स्वभाव होते हैं येही स्वभाव वस्तुओं के धर्म हैं। आत्मा में भी नाना स्वभाव होते हैं उनको खोज निकालना महापुरुषों का काम है। अरहंत ने अपनी आत्मा के सब गुण खोज डाले हैं और चैतन्य स्वभाव को रोकने वाले सबही शरीर के धर्मों से अपना बचाव कर लिया है, इसलिये वे योगविद्या के बल से अपने सब धर्मों के स्वामी बनकर संसार के सम्पूर्ण पदार्थों को देखने-जानने लगे हैं। अब उनके ऊपर शरीर का या शरीर के गुणों का कोई काबू नहीं रहा, इसलिये वे अब ईश्वर हो गये। उनको नमस्कार करने से हमको उनके गुणों का स्मरण होता है। जो गुण उनमें आज हैं वे ही सब गुण हम तुम में भी हैं। उन्होंने अपने गुणों को खोज निकाला है। हमें खोजना है। इसलिये हम उनका नाम ले लेकर उनके समान होने की इच्छा करते हैं।

श्रीचन्द्र–माँ! आज तुमने बढ़िया बात समझाई, अब हम समझ गये कि 'णमो अरहंताणं' का क्या अर्थ है। अब स्कूल का समय हो रहा है। बाकी अब कल समझाना।

माता–बेटा! एक बात और सुनले। भगवान् अरहंत का स्मरण हर समय मन में रखना चाहिये। सबेरे उठकर तो उसे इसलिये लेना चाहिये, जिससे हमारा मन प्रातः-काल से अपने इष्ट का स्मरण करले, जिससे उस दिन में हमसे कोई बुरे काम न हों।

श्रीचन्द-माँ! अरहंत का नाम लेने से क्या बुरे कामों की ओर मन नहीं जाता? अरहंत क्या उसे रोक देते हैं?

माता-प्यारे बेटा! हमको रोकने वाले हम ही हैं क्योंकि हम भी तो ज्ञानी आत्मा हैं।

श्रीचन्द्र-माँ हमको फिर मत उलझाओ। आज जो हमने समझा है उसे मन में उतार लेने दो।

माता-(हँस कर) अच्छा जाओ बेटा! नहाओ, कल फिर इसी समय बात करूँगी।

श्रीचन्द्र "णमो अरताणं" कहता कहता चला गया—

अभ्यास के लिये

१—अरहंत कौन हैं?

२—महात्मा किसे कहते हैं?

३—तुममें कितने गुण हैं?

४—धर्म किसे कहते हैं?

पिता और पुत्र २

श्रीचन्द्र—पिताजी ! आप भीगे कपड़ा पहने कहाँ से आ रहे हैं।

विमलदास-बेटा ! आज हमारे परम मित्र गुणधर का स्वर्गवास हो गया। इसलिये उनकी अन्तक्रिया में गया था। वहाँ से आया हूँ।

श्रीचन्द्र–हाय ! हाय ! चाचा कितने सीधे और सरल थे। स्वर्गवास कैसे हो गया पिता जी ?

विमलदास—कल ही उसके पेट में भयानक दर्द हुआ और अभी २०--२२ घंटे में शरीर छूट गया।

श्रीचन्द्र–क्या कहा शरीर छूट गया !

विमलदास–हाँ बेटा ! इस शरीर में जीव द्रव्य जब तक रहता है तब तक हम लोग जीते है और जब शरीर में से जीव चला जाता है तब शरीर मुर्दा हो जाता है।

श्रीचन्द्र–क्या कह रहे हैं आप ? क्या शरीर से जीव कोई अलग वस्तु है ?

विमलदास—हाँ बेटा ! शरीर जड़ पदार्थों से बनता है ; जीव चेतन द्रव्य है। दोनों के स्वभाव जुदे-जुदे हैं। जब जीव जन्म लेता है; तो जड़ के सहारे आकर उसमें रह जाता है।

श्रीचन्द्र—पिताजी ! भला यह बतलाइये, कि यह हम कैसे जाने कि इस शरीर में जीव है, कि नहीं ?

विमलदास—इसकी तो सरल पहिचान है। शरीर में जबतक जीव रहता है। उसकी इन्द्रियाँ हरकत करती रहती हैं, मान लो; कि एक स्थान पर दो आदमी चद्दर ओढ़े पड़े हैं। परन्तु एक आदमी जीवित है, एक मर चुका है तो उसकी सरल परीक्षा यह है; कि एक सुई लेलो और एक लकड़ी से दोनों के चद्दर हटाकर उन दोनों के शरीर में सुई चुभा दो, जो जिन्दा होगा; वह फौरन उठ खड़ा होगा। पर जो मरा होगा; वह वैसा ही पड़ा रहेगा। इस तरह दोनों की परीक्षा हो जावेगी। यदि तुम चद्दर उठाकर दोनों को ध्यान से देखोगे; तो जिन्दा आदमी का श्वासोच्छ्वास चलता पाओगे, उसकी बाईं छाती पर हाथ रखकर देखो; तो उसका दिल-जिसे हृदय कहते हैं-शब्द करता पाओगे। मुर्दा का न तो दिल धड़कता होगा; न किसी इन्द्रिय में कोई क्रिया होती होगी। इन्द्रियों में हलन-चलन कराने वाला जीव उसमें से चला गया, अतः वह अब केवल जड़ पदार्थ है। यदि उसे २-४ घंटे उसी तरह पड़ा रहने दिया जाय, तो उस शव में दुर्गंध आने लग जायेगी। अतः उसे तुरंत परीक्षा कर जला दिया जाता है ताकि बीमारी न फैले।

श्रीचन्द्र—पिताजी ! इन्द्रिय किसे कहते हैं। और वे कितनी हैं ?

विमलदास—वत्स ! जिनके द्वारा संसार के प्राणी विषयों को ग्रहण करें; उन्हें इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रियाँ पाँच होती हैं, स्पर्शन, जीभ, नाक, आँखें, कान, वृक्षों में एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

श्रीचन्द्र—क्या कहा पिता जी ? क्या ये वृक्ष पौधे वगैरह भी जीव हैं ? भला इनके इन्द्रिय कहाँ होती है ?

विमलदास—यदि ये जीव न होते तो ये वृक्ष जो तुम सामने देख रहे हो ; बढ़ते कैसे ? फल कैसे देते ? फूल कैसे लगते ? हरे भरे कैसे दीखते ? अतः इन हर एक पौधों में जीव रहता है, ये अपनी जड़ों से रस को जमीन में से खींचते हैं क्योंकि जमीन भी एकेन्द्रिय जीव है। वह भी कूड़ा-कचरा, खाद, नमक, टट्टी, पेशाब आदि जो उस पर पड़ते रहते हैं उनसे रस खींच कर अपने शरीर में मिला कर पुष्ट होती है। जिसे हम उपजाऊ जमीन कहते हैं ; वही उपजाऊ जमीन नाना प्रकार के बीजों को अपने गर्भ में रख, अपना रस देकर उन्हें उगाती है और धीरे धीरे उन्हें बढ़ाती है। उसी जमीन का भाई पानी है। उसमें भी पृथ्वी की तरह एक इन्द्रिय जीव होता है। वह अपने पौधे रूपी बच्चे को बढ़ाने के लिये अपने भाई पानी से सहायता लेती है और उन

पौधों को सूर्य्य की अग्नि से बचा लेती है। अग्नि इन पौधों से अपना भोजन खींचती है यदि पानी न बरसे; या जमीन का पानी सब अग्नि खा जाय, तो जमीन का बच्चा मर जाय। इससे यह जमीन अपनी बहिन हवा से प्रार्थना कर; पानी को बुलवाती है। हवा अपनी बहिन जमीन की बात खूब मानती है और वह दुनियाँ में से पानी को बुला बुला कर लाती है; तथा अपनी छाती पर उसे बिठा-बिठा कर बरसती है। कभी कभी जब पानी ज्यादा बरसने लगता है तो अपनी बहिन पृथ्वी के बच्चों—फूल पौधों को बचाने के लिये पानी को ऐसी जोर की थपेड़ें मारती है कि उसकी मार से घबड़ा कर पानी ऐसी जगह भाग जाता है कि जहाँ जमीन को उसकी जरूरत होती है। इस तरह पृथ्वी, पानी, हवा, अग्नि और वृक्ष ये पाँचों एक ही जाति के जीव हैं ये सभी एक स्पर्शन इन्द्रिय वाले होते हैं। उसी एक इन्द्रिय से अपना शरीर भी पोषण करते हैं और दुनियाँ के भी काम आते हैं। यह इन्द्रि उनके सब शरीर में होती है।

श्रीचन्द्र—अच्छा! ये बात है! तभी अम्मा रोज गाढ़े छन्ना से पानी छानती है; जिसमें जीव हमारे शरीर में जाकर हमको रोग पैदा न कर दे। क्योंकि हमने देखा है कि जहाँ पानी जमा हो जाता है, वहाँ छोटे छोटे बहुत से

कीड़े पैदा हो जाते हैं। हमको एक दिन मास्टर साहब मना कर रहे थे; कि ऐसी गन्दी जगह मत जाया करो जहाँ विषैले कीड़े हों, पर हम क्या समझें कि ये क्या कह रहे हैं। अब आपके कहने से मालूम हुआ, कि कुछ ऐसे भी जीव हैं जो एक इन्द्रिय वाले होते हैं उनमें पानी, हवा, जमीन, अग्नि और ये वृक्ष पौधे हैं और ये छोटे छोटे कीड़े-मकौड़े हैं।

विमलदास--बेटा! ये कीड़े-मकोड़े एक इन्द्रिय नहीं होते, इनमें नाना जातियाँ होती हैं। पर अब तो तुम भूखे होगे, स्कूल से आये हो। जाओ, खाओ, पीओ, हम फिर बतायेंगे कि ये सब क्या हैं।

श्रीचन्द्र हाथ जोड़ कर भोजन करने चला गया--

अभ्यास के लिये

(१) पौधों और वृक्षों की कितनी इन्द्रियाँ होती हैं ?

(२) वृक्ष क्या खाते हैं ? जमीन में रस कहाँ से आता है ? पानी कौन बरसाता है ? हवा से तुम्हारा क्या लाभ है ? हवा जीव है, या अजीव ? तुम में स्पर्श इन्द्रिय है या नहीं ? स्पर्श इन्द्रिय का क्या काम है ? जीवों के शरीर में स्पर्शन इन्द्रिय कहाँ होती है ? वृक्ष की इन्द्रिय कहाँ है ? इन्द्रिय किसे कहते हैं ? इन्द्रियाँ कितनी होती हैं ? तुम अपनी इन्द्रिय गिनाओ। घड़ो में स्पर्श इन्द्रिय होती है या नही ?

अमरचन्द्र ४

अमरचन्द्र और श्रीचन्द्र में घनिष्ट मित्रता थी। दोनों पाँचवीं कक्षा में पढ़ते थे। श्रीचन्द्र जितना सरल और कोमल प्रकृति का था, अमरचन्द्र उतना ही कठोर एवम् सख्त मिज़ाज का था। पर इन दोनों में मित्रता का एक ही कारण था, वे दोनों सदाचारी थे। पाँच वर्ष के अध्ययन काल में आचरण दोष से कभी उन्हें दण्ड नहीं मिला।

एक बार अमरचन्द्रने अपनी कक्षा के एक शरारती लड़के रामदयालु को एक तमाचा मार दिया। लड़के दौड़े हुए मास्टर साहब के पास पहुँचे और अमरचन्द्र की शिकायत करने लगे। अध्यापक को गुस्सा आया और उसने जाकर अमरचन्द्र को बेत मारने के लिये ऊँचा उठाया, पीछे से श्रीचन्द्र ने बेत पकड़ कर बड़ी विनय से कहा, कि गुरुदेव! 'न्याय होना चाहिये, अध्यापक श्रीचन्द्र के नम्र और सरल स्वभाव को जानता था और उसकी सचाई पर तो उसे नाज़ था। अध्यापक महोदय के मन पर श्रीचन्द्र के सत्य आचरण की अमिट छाप थी, उसने पीछे मुड़ कर पूछा; क्या कहा श्री? न्याय होना चाहिये'? श्रीचन्द्र ने बेत छोड़ कर कहा, हाँ गुरुदेव! अध्यापक ने पूछा, क्या अमरचन्द्र ने रामदयालु, को नहीं मारा? श्रीचन्द्र-गुरुदेव!

इस सत्य को कौन इन्कार कर सकता है। परन्तु न्याय की दृष्टि से भाई अमरचन्द्र का अपराध नगण्य है। अध्यापक महोदय कड़ककर बोले; तो क्या न्याय का ठेका हमने तुम्हें दे रखा है? श्रीचन्द्र विनय पूर्वक बोला, गुरुदेव! आपने उस दिन पढ़ाते हुए कहा था कि–

'प्राणा यथात्मनोभीष्टा भूतानामपि ते तथा।
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति,

अध्यापक-हाँ! कहा तो था, क्या इसका यही मतलब है कि किसी को मारकर उसे कष्ट पहुँचाया जाय?

श्रीचन्द्र—गुरुदेव! आपके पास गलत रिपोर्ट पहुँची है। अतः आप...

अध्यापक-हो सकता है। शरारती लड़के कुछ नमक-मिर्च लगाकर दोष को बढ़ाकर कह दें। पर यह तो तुम भी स्वीकृत कर चुके हो; कि अमरचन्द्र ने रामदयालु को मारा है।

श्रीचन्द्र—हाँ गुरुदेव! मारा है और कस कर एक तमाचा मारा है, पर इसके सिवाय दूसरा मार्ग ही अमरचन्द्र के पास नहीं था।

अध्यापक-श्रीचन्द्र! क्या तुम अपने मित्र के दोष को पक्षपात से ढकना चाहते हो?

श्रीचन्द्र—(विजय से) नहीं गुरुदेव! मेरा यह आशय

हरगिज नहीं है; कि गुरुजी के अनुशासन में अनुचित हस्त-क्षेप कर महान् अपराध करूँ।

अध्यापक श्रीचन्द्र की दृढ़ता और विनय शीलता से मुग्ध होकर बोले, श्रीचन्द्र ? तो क्या तुम समझते हो कि अमरचन्द्र ने रामू को मार कर कोई पुण्य कृत्य किया ?

श्रीचन्द्र—निःसन्देह; गुरुदेव !

अध्यापक-सो कैसे !

श्रीचन्द्र—अपने हाई स्कूल के बगल में रहने वाले मुसलमान जमीदार की लड़की, दो आम लिये आ रही थी, रामू ने झपट कर उससे दोनों आम छीन लिए। लड़की इस धक्के-मुक्के में गिरनाही चाहती थी, कि अमरचन्द्र ने उसे सम्हाल कर रामदयालु से कहा; रामू ! तुम्हें मालूम है कि यह लड़की नवाब साहब की है ! वे अपने स्कूल को उठाने का अनेकबार प्रयत्न कर चुके हैं। यदि आज तुम्हारी यह बेहूदी हरकत उनके कानों में पहुँचेगी; तो आग बबूला हो जावेंगे और सम्भव है; यह छोटी सी घटना अपने स्कूल पर कोई गहरी विपत्ति उपस्थित कर दे।

यह सुनकर-रामदयालु ने गाली देते हुए कहा, यह छोकरी क्या तेरी जोरू है ? जो तू इसकी रक्षा करने चला है ? ऐसे सुन्दर आम क्या इन पाकिस्तानियों के बाप के हैं ? जब अमरचन्द्र ने देखा कि, रामदयालु यदि आम न देगा;

तो झगड़ा बढ़ जायगा। तब उसने रामदयालु से कहा। रामदयालु जरा होश सम्हाल कर बोल। आज ये नवाब हिन्दुस्तान में रहते हैं अतः हिन्दुस्तानी हैं। इनकी सन्तानें हमारी बहिनें हैं। हमको इनके साथ वही बर्ताव करना चाहिये जो हम इनसे चाहते हैं। इसलिये तुम इसके आम इसे दे दो; नहीं तो इसका बुरा परिणाम होगा। यह सुनकर रामदयालु, अमरचन्द को माँ-बहिन की गाली देने लगा, तब अमरचन्द ने देखा, कि सीधी अँगुली घी नहीं निकल सकता. अतः रामदयालु के गाल पर कस कर एक तमाचा मारा, जिससे रामदयालु के हाथ से दोनों आम छूटकर जमीन पर गिर गये। अमरचन्द्र ने आम उठाकर हसीना को दिये और उसे समझा कर घर भेज दिया। वह हँसती हुई आम लेकर घर भाग गई।

अध्यापक—श्रीचन्द्र! यदि तुम्हारा बयान सच है! तो निःसन्देह रामू ने बड़ा पाप किया और उसकी सजा उसे मिलनी ही चाहिये। रामदयालु की ओर देखकर अध्यापक ने पूछा, क्यों बे रामू! क्या यह सब सच है?

रामदयालु ने नीचा सर कर लिया।

अध्यापक ने आज्ञा दी। आज से एक हफ्ते तक रामदयालु स्कूल में आकर कक्षा में न बैठ सकेगा और यदि गैर हाजिर रहा; तो स्कूल से नाम खारिज कर दिया जायगा। तथा अमरचन्द्र को बुला कर सब लड़कों के

सामने धन्यवाद देते हुए कहा। अमरचन्द्र! तुमने बड़ी आफत से स्कूल को बचाया, अतः आज से तुम पाँचवीं कक्षा के प्रधान छात्र रहोगे। इसके बाद अध्यापक ने लड़कों से कहा। प्यारे बच्चों!

पढ़ने का अर्थ है शिक्षा को जीवन में उतारना, आज अमर ने ३ काम किये हैं।

१ स्कूल को आने वाली आफत से बचाया।

२ अपने भाई को नाजायज तरीके चीज लेने से रोका, जिसे डांका कह सकते हैं।

३ अहिंसा का सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया। छात्रों का ध्यान ऐसे कर्तव्यों की ओर जाना ही शिक्षा का सफल प्रयोग है।

अभ्यास के लिए प्रश्न

१—रामदयालु को मार कर अमरचन्द्र ने क्या काम किया?

२—अध्यापक ने उसे धन्यवाद क्यों दिया?

३—अहिंसा व्रत का लक्षण क्या है? तथा अमरचन्द्र ने क्या हिंसा नहीं की?

४—'प्राणाःयथात्मनो' भीष्टाः इस श्लोक का क्या अर्थ है?

५—इस श्लोक से कथा का क्या सम्बन्ध है?

६—श्रीचन्द्र ने अध्यापक का बेत पकड़ कर उचित किया या अनुचित?

७—इस कथा से तुम क्या समझे संक्षेप में इसका आशय लिख लाओ?

अमलचन्द ५

श्रीचन्द्र अपनी माता गुणमाला देवी से अपने घर के प्राङ्गण में बैठा बातें कर रहा था, इतने में अमलचन्द्र ने आकर कहा--मौसी जी ! 'नमस्कार'।

गुणमाला—दीर्घजीवी होओ बेटा। आज कैसे रास्ता भूल गये ! क्या आज तेरी माँ ने तुझे जबरदस्ती ठेल कर यहाँ भेजा है !

अमलचन्द—-मौसी जी ! आप ठीक ही कह रही हैं। माता जी ने आज प्रातःकाल ही कह दिया था, कि आज ठीक ११ बजे मौसी के यहाँ जरूर जाना। इसी लिये मैं यहाँ आया हूँ।

गुणमाला—श्रीचन्द ! तू ने बड़े भाई को प्रणाम नहीं किया ? ये मेरी बहिन सरस्वती का बेटा है। आज कल यह दशवीं कक्षा में पढ़ता है। इसके बाबूजी का तबादला यहीं के इम्पीरियल बैंक में हो गया है, इसके बाबू जी बैंक के खजांची हो गये हैं।

श्रीचन्द्र ने उठकर अमरचन्द्र के पैर छूकर प्रणाम किया। अमलचन्द्र ने भी सरपर हाथ रखकर 'जियो', कह कर आशीर्वाद दिया।

गुणमाला—अमल ! तुम्हारी माँ ने क्या कह कर तुम्हें यहाँ भेजा है ?

अमल—मौसी जी ! अम्मा यह कह रही थीं; कि तेरी मौसी धर्म कर्म अच्छा जानती हैं। हर इतवार को जाकर उनसे धर्म के सम्बन्ध में कुछ पूछ आया कर। अतः मैंने सोचा, क्या जाने कब बाबू जी का कहाँ स्थानपरिवर्तन हो जावे। इसलिये जितने दिन यहाँ हैं कुछ धर्म की ही बातें जान लूँ।

गुणमाला—क्या करोगे बेटा ! धर्म जान कर ?

अमल—मौसी जी ! मेरे छोटे भाई की जब मृत्यु हुई, तो मेरे पिताजी ने एक ऐसा आदर्श उपस्थित किया कि हमलोग दंग रह गये। मुन्ना को तो एक चटाई पर सुला दिया, माताजी को वहाँ से हटा दिया और लगे मंत्र को जोर जोर से बोलने। आपसे क्या कहूँ मौसीजी ! मुन्ना के इन्तकाल बाद भी जब तक शव घर में रखा रहा; उन्होंने एक मिनिट भी बोलना बन्द नहीं किया। इसका फल यह हुआ, कि माताजी तबतक शान्त रहीं, जब तक शव घर में रहा। इसके बाद पिताजी ने हमलोगों को इस तरह समझाया, कि हमलोग मुन्ना की मृत्यु को भूलसे गये हैं। तब से माताजी का धर्मपर बड़ा विश्वास हो गया।

और वे धर्मज्ञान को जीवन का आवश्यक अङ्ग समझने लगी हैं। मौसीजी! मुझे तो पिताजी की शान्ति देख कर निश्चय हो गया, कि यदि हमारे पिताजी ने ऋषभ ब्रह्मचर्य्याश्रम में रह कर धर्मशास्त्र न पढ़ा होता, तो हरगिज वे इतने शान्त नहीं रह सकते थे।

गुणमाला--बेटा अमल! धर्मशास्त्र का ज्ञान आज दुनियादारी के लिये कीमती न होने पर भी आत्मा में शान्ति पाने के लिये बड़ा आवश्यक है। अच्छा अमल! तुमको वह मंत्र याद है जो तुम्हारे पिताजी उस समय बोल रहे थे।

अमल ने कहा-जी! उस समय तो याद हो गया था, पर अब मैं कह न सकूँगा; हाँ! एक बार कोई फिर बतादे, तो मैं बोल सकता हूँ। गुणमाला ने श्रीचन्द्र को इशारा किया। श्रीचन्द्र बोला-भइया! क्या वह मंत्र यही तो नहीं है लो सुनो।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं। णमो लोए सव्वसाहूणं॥

अमल--हाँ! हाँ! यही तो वह मंत्र है। मंत्र क्या है जादू का पिटारा है।

श्री चन्द ने कहा-भैया! यह कैसे?

गुणमाला-श्रीचन्द्र! चलो कमरा में बैठकर बातें करना, मैं तबतक थोड़ा जलपान ले आती हूँ।

२

नाश्ता करके सब लोग एक कमरे में जाकर चटाई पर बैठ गये। तब श्रीचन्द बोला, माताजी! भइया ने कहा है कि णमोकारमंत्र में जादू भरा है क्या यह सच है?

गुणमाला—सच! और सोलहआना सच!! इसका एक ही कारण है, कि इस मंत्र में किसी खास ईश्वर का नाम नहीं है। किन्तु ऐसे महापुरुषों का नाम है जिन्होंने केवल शान्ति पाने के लिये ही संसार छोड़ा था। जब तक संसार की माया ममता में यह मनुष्य लगा रहता है, तब तक शान्ति नहीं मिलती। जो जीव संसार में आया है, वह जरूर जायगा।

संयुक्तानां वियोगश्च भविता हि नियोगतः।
किमन्यैरङ्गतोऽप्यङ्गी निःसङ्गो हि निवर्तते॥

जिन मनुष्यों, या प्राणियों का सम्बन्ध आज हमको दिखाई देता है उनका वियोग जरूर होगा, या तो वे हमको छोड़कर चले जायँगे। या हम उनको छोड़कर चले जावेंगे। औरों की तो क्या बात की जाय, यह शरीर जिसमें हम बाल्यकाल से रहते हैं इसे भी छोड़कर हमको जाना होगा। जब यह बात निश्चित है तब हमको अपने जीवन में वह उपाय कर लेना चाहिये, जिससे हम शान्ति को स्थिर रखकर जी सकें।

श्रीचन्द—माता जी ! मुझे तो आप यह बतावें कि इस मंत्र में ऐसी क्या बात है, जिससे हमको इसके पढ़ने से अपूर्व शान्ति मिल सकती है ?

गुणमाला—वत्स ! ध्यान से सुनो। मैं मंत्र की सारी बातें आज तुम दोनों को बताये देती हूं। जैसे मनुष्य अँधेरे में बिना दीपक के चले, या अपरिचित मकान में जाय; तो उसकी जो दशा हो वही इस मंत्र के बिना हम संसारी प्राणियों की होती है। क्योंकि मंत्र में सबसे पहले "णमो अरहंताणं", पद है जिस का अर्थ ये है कि उन महान् आत्माओं को नमस्कार हो, जिन्होंने संसार की माया ममता का सर्वथा त्याग कर, वह ज्ञान पा लिया है जिससे उन्हें संसार के सभी रास्ते साफ साफ दिखलाने लगे हैं। अब वे कहीं न तो धोखा ही खा सकते हैं, न कहीं गिर ही सकते हैं। संसार का कोई पदार्थ ऐसा नहीं रहा, जो उनके ज्ञान में न आया हो, वे घट घट के जानने वाले हैं। तथा संसार में उनका कोई शत्रु बाकी नहीं रहा, सब जीवों पर उनका समान रूप से दया का भाव है उन विभूतियों का नाम अरहंत है। दूसरा पद है 'णमो सिद्धाणं, इसका अर्थ है, उन शुद्ध आत्माओं को नमस्कार हो जिन्होंने संसार और शरीर से सम्बन्ध त्यागकर परम

स्वतंत्र अवस्था प्राप्त कर ली है। अब वे संसार में कभी नहीं आवेंगे। लोक के अन्त में पूर्ण शान्ति का अनुभव अनन्त काल तक करते रहेंगे। वही पूर्ण शान्ति हमलोग चाहते हैं, अतः उनका नाम हमको, सदा लेते रहने का आशय सिर्फ यही है, जिससे हमारा वह दिन कब आवे, जब हम भी उनकी तरह पूर्ण शान्ति के स्थान में पहुँचकर संसार के सारे दुःखों से छूट जावें। तीसरा पद है– "णमो आइरीयाणं", इसका अर्थ उन आचार्य महोदय को नमस्कार हो जो पूर्णशान्ति के मार्गपर स्वयं चल रहे हैं और संसार के प्राणियों को उसी शांतिमार्ग पर चलने की प्रेरणा करते रहते हैं। उनका दिव्यज्ञान सदा सत्य और अहिंसा के प्रचार में लगा रहता है। आज भारत में पूर्ण शान्ति की रूपरेखा बतानेवाले जितने ग्रन्थ मिलते हैं, वे सब उन महर्पियों की कृपा का फल है। उनका स्मरण, उनको नमस्कार करते समय हमारे मंन में सदा यह भाव बना रहे, जिससे हम उनके बताये मार्ग पर सदा चलते रहें। चौथा पद है'णमो उवज्झायाणं', उपाध्याय महर्पियों को हमारा नमस्कार हो जिनकी कृपा से संसारके प्राणी पदार्थों के गुण धर्मको, असली रूपमें समझ सके हैं। उन महापुरुषों का सदा यही काम है कि पदार्थों के सूक्ष्म स्थूल रूपों की सरल भाषा में संसार के सामने

आत्म दर्शन

[illegible] उमास्वामि
मोक्षशास्त्र के प्रणेता

आज से दो हजार वर्ष पूर्व के प्रधान तार्किक सूत्रकार आपने तत्त्वार्थाधिगम—मोक्षशास्त्र की रचना कर आत्म दर्शन का महान् उपकार किया।

रखते रहें। वे जिस सरलता से साधुओं को समझाते हैं उसी सरलता और हितकामना से प्राणीमात्र को समझाने में लगे रहते हैं। वे किसी प्रकार की न तो याचना करते हैं। न उन्हें संसार के पदार्थों की चाह ही है। उनका जीवन में एक ही काम है, आगम-अरहन्त प्रतिपादित वस्तुओंके स्वरूप को समझाने वाले शास्त्रों को स्वयं पढ़ना, और दूसरोंको पढ़ाना। पाँचवाँ पद है 'णमो लोए सव्वसाहूणं', इसका अर्थ है, इस ससार में जो संत, संसार की माया ममता का त्याग कर आत्मा की खोज में लगे हैं। ज्ञान, ध्यान, तप ही जिनका एक काम है। इन्द्रियों के विषय-भोजनादि में जिनको कोई राग द्वेष नहीं, निरन्तर शान्ति का पथ बनाना ही जिनका ध्येय है उन साधुओं को नमस्कार हो। उनको ननस्कार करने से हमारे मन में शान्ति तथा सदाचरण का संस्कार आता है। ये ही पाँच प्रकार के परमेष्ठी—आत्मा की सत्यरूप रेखा के जाननेवाले, अनुभव करनेवाले तथा प्रचार करनेवाले हैं। इनको नमस्कार करने से, इनकी उपासना पूजा विनय, सत्कार करने से आत्मा के ज्ञान गुण में सचाई का भाव आता है। और सचाई को जीवन में उतारने से परम शान्ति मिलती है। समझे, बेटा अमल!

श्रीचन्द्र--माताजी! इस मंत्र का यह अर्थ जानने वालों

को शान्ति मिले यह बात तो समझ में आती है। पर जो इसका अर्थ नहीं समझते उन्हें शान्ति कैसे मिल सकती है ?

माता---बेटा श्री ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया, उसका सीधा उत्तर ये है कि सँपेरा जब साँप पकड़ने को बुलाया जाता है तब वह अपने मंत्र से कौड़ी मंत्रकर साँपवाले मकान के चारों कोनों में फेंक देता है। जहाँ साँप छिपा होता है कौड़ी उसी कोने में जाकर उसके सिरपर चिपक कर उसे खींचकर ले आती है। इसी तरह इस णमोकार मंत्र के अक्षरों का यह प्रभाव है कि शान्ति दुनिया से खिंचकर मंत्रोच्चारण करने वाले के पास खिंची चली आती है।

श्रीचन्द्र--माँ ! आज तो तुमने मंत्र का माहात्म्य मेरे हृदयपर लिख दिया, तथा यह आदर्श हमारे सामने रख दिया जो जीवनभर भुलाया नहीं जा सकता।

अमल–मौसी जी ! आज तो आपने हम लोगों की आँखें खोल दीं, हम खाने पीने मौज उड़ाने को ही शान्ति और सुख समझते थे। पर आपके भाषण से तो यह निश्चित मालूम हो गया कि शान्ति त्याग और इच्छाओं को रोकने में है।

गुणमाला–बेटा! इच्छाएँ अपने स्वरूप को नहीं समझने वालों के ही होती हैं। क्योंकि ज्ञानी मनुष्य पदार्थों की भलाई बुराई समझने लगता है। इसलिये वह वही काम करना चाहता है जिसमें उसका सच्चा हित होता हो। अच्छा भइया! अब हमारे काम का समय हो गया, फिर अगले रविवार को आना, तब हम इन पाँचों परमेष्ठियों की उपासना कैसे की जाती है और उससे हमारा क्या लाभ है? यह बताऊँगी।

श्रीचन्द्र–माँ, मैं भी यही पूछने वाला था, पर आप ने स्वयम् कह दिया, अच्छा भाई साहब! चलिये जरा हमारे पठनगृह को भी देख लीजिये।

अमल०–हाँ, श्री! तेरा पठनस्थान जरूर देखूंगा, चल, पठनगृह देख। अमलचन्द्र बोला–श्री, तुम आगे चलकर बहुत बड़े विचारक बनोगे। तुमने खूब सोच सोच कर चीजों को ठिकाने से रखा है, यही गुण तो छात्र का भविष्य बताता है। कुछ लड़के ऐसे होते हैं कि वे अपने पढ़ने लिखने के सामान को छितरा कर चल देते हैं। और जब समय पर किसी चीज की जरूरत होती है तो ढूँढ़ते फिरते हैं। यह दोष छात्र का साधारण दोष नहीं, महान् दोष है।

श्रीचन्द्र–भाई साहब! हमारी माँ ने हमको एक बार

यही कहा था जो आप कह गये। बस उसी दिन से मैं सावधान हो गया।

अमलचन्द्-यही तो अच्छे लड़कों का काम है। जो अपने उपयोग की वस्तुएँ ठिकाने नहीं रख सकता वह बड़ा विद्वान् होकर भी अविवेकी है, उसके जीवन में सचाई, विवेक या आत्मसंयम की गंध भी नहीं उतरी। ऐसे आदमियों से संसारका क्या भला होगा। वे अपने स्वयं अँधेरे में हैं। अच्छा भाई, आज तो समय अधिक हो गया, अगले इतवारको मैं १० बजे ही आ जाऊँगा, तब कुछ जरूरी बातें बताऊँगा।

श्रीचन्द्र ने अमल के पैर छूकर प्रणाम किया। अमलचन्द्र आशीर्वाद देकर घर चला गया।

—:०:—

अभ्यास के लिये प्रश्न

णमोकार मंत्रका अर्थ लिखो ?

मंत्र से शान्ति कैसे मिलती है ?

अमल चन्द्र के मन में धर्मशास्त्र पढ़ने की इच्छा क्यों हुई ?

बच्चों की बुरी आदतें पाठ में से बताओ ?

विवेकी किसे कहते हैं ?

इस पाठ से तुमने क्या सीखा ?

गुणधर ६

गुणधर सिनेमा देखने के लिये घर से निकला ही था, कि मार्ग में उसे विमलदास जी मिल गये। उन्होंने पूछा-गुणधर! जल्दी जल्दी पैर उठा कर कहाँ भागे जा रहे हो? गुणधर नहीं चाहता था, कि हमारे मामा हमको छेड़ें। क्योंकि ५-१० मिनट देर हो जायगी; तो फिर सिनेमा का टिकट नहीं मिलेगा और आज उसने तानसेन और तानी खेल देखना तय कर किया था। पर जब मामा ने छेड़ ही दिया तब करता क्या? उसने खड़े होकर कहा-मामा जी! अम्माँ ने दरजी बुला लाने को स्कूल जाते समय कहा था, परन्तु मैं स्कूल से आते समय भूल गया। इसलिये सोचा कि अब जल्दी बुला लाऊँ, नहीं तो अम्माँ नाराज होंगी।

विमलदास, गुणधर का मुख संकुचित देखते ही जान गये थे, कि वह झूठ बोल रहा है। पर उन्होंने उससे कहा, कि गुणधर! मेरी दुकान पर अच्छा ईमानदार दरजी बैठता है, कल हम उसे सवेरे ८ बजे भेज देंगे। चलो जरा हमारे साथ, आज हमें तुमसे दो बातें करना है।

गुणधर अब विवश हो गया, आगे वह यह सोच कर भी न सोच पाया, कि मामा के चंगुल से अपना पीछा कैसे छुड़ावे। जब उसे कोई उपाय न दिखा; तो कहने

लगा–मामा जी! आज मुझे स्कूल का बहुत सा काम करना है। पूरा नहीं करने पर कल मास्टर साहब के सामने क्या जवाब दूँगा।

गुणधर को बात बनाते देख विमलदास बोले—गुणधर! कल तो रविवार है, कल दिन भर पड़ा है, स्कूल का काम कल कर लेना। चल, आज तो हमारे साथ चल। गुणधर अब क्या करता, उसके सारे रास्ते बन्द थे। बिचारा चुपचाप मामा के पीछे हो लिया, यद्यपि सारे रास्ते बन्द थे तो भी वह इस फिराक में रहा, कि कोई उपाय सूझे और मामा को झाँसा दे निकल भागूँ। पर मामा भी उससे कम सतर्क न थे।

उन्होंने गुणधर से कहा–गुणधर! जरा ये रुपयों की थैली तो ले लो, अब बिचारे की सारी आशा निराशा की शकल में बदल गई; थैली मामा के हाथ से लेकर, मामा के आगे आगे चलने लगा। रास्ता में उसे श्रीचन्द्र दिखाई दिया। उसने श्रीचन्द्र को पुकारना चाहा। परन्तु श्रीचन्द्र तो पिता को देखते ही दौड़ा चला आया, और अपने पिता से बोला। पिता जी! आज तो आप को बहुत देर हो गई, माता जी भोजनके लिये आपकी राह देखते देखते जब ऊब गई, तब उन्होंने दुकानसे आपको बुलाने के लिये मुझे भेजा है। फिर गुणधर को देख हाथ जोड़ कर प्रणाम

किया और बोला, भाई साहब ! आप तो आज सिनेमा का प्रोग्राम तय कर चुके थे, फिर इधर कैसे आ निकले।

गुणधर पर घड़ों पानी ढुल गया, पर करता क्या ? चोर जो पकड़ा गया था। बिचारा चुपचाप मामा के घर पहुँचा, घर पहुँचते पहुँचते राह भर की बिजली जल गई।

विमलदास ने कहा—श्री ! जा तो अपनी माँ से कह दे, आज हमको भोजन नहीं करना है। दुकानसे आते आते छह बज गये हैं। श्रीचन्द्र बोला, तो पिता जी आज अम्माँ भी भूखी रहेंगी। विमलदास ने कहा-क्या बताऊँ, मैं आज जब से घर से गया, दुकान में ऐसा फँसा कि किसी तरह न निकल सका। एक गिलास पानी ले आ, भोजन का तो अब समय ही नहीं है। गुणधर चुपचाप सब सुनता जा रहा था। श्रीचन्द्र जल्दी से अन्दर गया और एक गिलास में दूध और एक में पानी लेकर तुरन्त लौट आया। गुणधर ने देखा, कि विमलदास ने दूध में से एक कीड़ा निकाल कर बाहर फेंकते हुए कहा-देख श्रीचन्द्र ! रात को खाने का स्वाद ! श्रीचन्द्र ने जब देखा कि दूध में से मरी मक्खी निकली है। तो उसने सोचा, कि मेरी गलती से ऐसा हुआ। माँ तो छन्ना से ढाँक कर दूध ला रहीं थी। मैंने असावधानी से छन्ना रास्ते में गिरा दिया और इसमें मक्खी पड़ गई।

दूध गरम था इसलिये उसमें गिरते ही मक्खी मर गई। हाय! मैं कितना बड़ा पापी हूँ।

गुणधर बोला—क्या हुआ, ऐसे तो सैकड़ों कीड़े मकोड़े हमारे पैर के तले दब कर प्रति दिन मरते रहते हैं। क्या इनके मर जाने से हम पापी हो गये हैं?

विमलदास ने पानी पीकर गिलास रखते हुए कहा—गुणधर! तू इन सब बातों को क्या जाने। हिंसा क्या बला है।

गुणधर बोला—मामा जी! मेरी माँ भी ऐसी आल जलूल बातें करती रहती हैं। इसमें पाप हो गया, उसमें पाप हो गया, यह जीवों का पिंड है। इसमें जीव पड़ गये। मैं तो इन सब बातों को सिवा पागलपन के और ज्यादा महत्त्व नहीं देता। हमारी जाति में यह खब्त सवार हो गया है कि जिसमें डाक्टर लोग ज्यादा विटामिन बताते हैं वहीं हमारे यहाँ जीवों का पिंड माना गया है। मामा जी! मैं पूछता हूँ कि ये जीव क्या इन्हीं पौष्टिक पदार्थों को ढूँढ़ते चलते हैं। मुझे तो समझ में नहीं आता कि क्या माजरा है।

विमलदास ने कहा—बेटा! गुणधर तुम नवमीं कक्षा में पढ़ते हो और उड़ीं उड़ीं बातें करते हो जैसे तुम्हारा धर्म से कोई नाता ही न हो।

गुणधर बोला–मामा जी ! क्या धर्म यही सिखाता फिरता है कि फूँक फूँक कर पैर रखो, नहीं जीव मर जायगा। ऐसे धर्म को तो दूर से ही नमस्कार करना चाहिए। आज जमाना कहाँ जा रहा है। और हम लोग कहाँ जा रहे हैं।

गुणधर की बातें सुनकर श्रीचन्द्र की माँ गुणमाला भी आ गई।

विमलदास ने कहा–सुनी जी, अपने भानजे की बातें। अभी तो मेट्रीकुलेट भी नहीं हुआ तब ये हाल है। यदि बी० ए०, एम० ए० हो जायगा तो आसमान से बातें करेगा। जमीन पर इसका पैर क्योंकर जाने लगा। श्रीचन्द्र से अब न रहा गया। वह बड़ी नम्रता से बोला–पिता जी ! इसमें भइया का दोष जरा भी नहीं है। हमारे स्कूलों में धर्म कर्म की कोई कीमत नहीं है। हम लोगों को जो पढ़ाया जाता है उसका यही प्रभाव हो सकता है। हमारी तो अभी पाँचवीं ही कक्षा है पर हमारे साथी इससे भी ज्यादा बातें रोज करते हैं। वे तो धर्म को ढँको-सला कहने में भी नहीं सँकुचाते। पंडितों को तो उनके मुँह पर ही पोपसाहब कहते हैं।

गुणमाला बोली–बेटा ! आज का जमाना, धर्म के लिये लोग मानते ही नहीं, आज का नारा है

'मरो या करो' तब लोग धर्म की बातें करने वालों को उल्लू समझें इसमें आश्चर्य ही क्या है। पर यह स्थिति बहुत दिन न रहेगी। एक दिन इन नव शिक्षितों को पीछे की ओर देखना ही होगा। भारत अनादि काल से धर्मप्रधान देश रहा है। उसकी अनन्त काल की संस्कृति आज समूल नष्ट नहीं की जा सकती? भारत पर हजार डेढ़ हजार वर्ष से बड़े बड़े हमले हुए। पर कोई बादशाह या सम्राट् भारत की संस्कृति नहीं मिटा सका। और आत्मधर्म के विषय में तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि विज्ञान के आधार पर जिस धर्म का शिलान्यास हुआ है उसे तो कभी खतरा ही नहीं है। पर आज हमको अपने प्रचार का रवैया बदलना है। आज हमको धर्म के मौलिक सिद्धान्तों को आज की भाषा शैली और युक्तियों को कलेवर पहिनाकर रखना है। तभी हम इसे सुरक्षित रख सकेंगे।

गुणधर बोला—मामी जी! आपके विचार बड़ी सुलझे मालूम पड़ते हैं। आज यदि जमाने की माँग को ध्यान में रख, किसी भी धर्म के मौलिक सिद्धान्तों को वैज्ञानिक विचारधारा में ढाल कर रखा जायगा, तो ही लोग चाव से पढ़ेंगे। अन्यथा घर घर में टेबलके नीचे टोकरियाँ रखी रहती हैं।

गुणमाला—गुणधर ! तुम ठीक कहते हो । मैं तुम्हारे विचारों से पूर्ण सहमत हूँ । आज हमें अपने सारे तरीके बदलना है । नव युवकों की उद्दण्डता को संयत करने परिमार्जित भाषा और भावों का निर्माण करना है । अच्छा, आओ भइया ! भीतर चलें । कमरे में बैठ कर बातें करेंगे । यहाँ ठंड लगने लगी ।

२

कमरे में बैठकर गुणधर बोला--मामी ! मामा जी ने तो आज दूध भी नहीं पिया, और मैं जानता हूँ तुमने भी कुछ न खाया होगा, क्या यही आत्मधर्म है कि आत्मा को भूखा मार डालना । क्या यह हिंसा नहीं है ? गुणमाला-गुणधर ! तुम बड़े विचारक मालूम होते हो हरएक बात बड़ी दूर तक सोचते हो । इसलिये तुम्हारे जैसे योग्य छात्रों को, हर विषय दिल खोलकर समझाने का जी चाहता है । लो सुनो, हम बतावें कि हमारा भोजन त्याग पाप है या धर्म । गुणधर—मामीजी ! मैं आपकी बातें बड़े ग़ौर से सुनूंगा और जो गले के नीचे न उतरेगी उसे बराबर पूँछता रहूँगा जब तक मेरा मन स्वीकार न कर ले ।

गुणमाला-यही तो बुद्धिमानों के लक्षण हैं 'बुद्धेः

फलमनाग्रहः', बुद्धि का फल ही है खूब समझकर ग्रहण करना और समझ में आजाने पर हठ नहीं करना।

गुणधर-इसमें क्या शक, अच्छा कहिये।

गुणमाला-पहले यह बताओ, कि कीड़ों के शरीर में ज़हर होता है कि नहीं ?

गुणधर- होता है और जरूर होता है। हैजे के अलग कीड़े होते हैं, मलेरिया के अलग, टी० बी० के अलग, इन्फ्लूऐन्जा के अलग, गर्ज ये है कि वैज्ञानिकों ने प्रत्येक रोग के अलग अलग कीड़े माने हैं। संसार में जितने रोग होते हैं उनके पैदा करनेवाले कीड़े तो हैं ही। इसे आज कौन इनकार कर सकता है।

गुणमाला-क्या मक्खी भी किसी रोग को पैदा करती है ?

गुणधर-क्यों नहीं ? हैजा फैलाना मक्खी का खास काम है। वह अक्सर गन्दी जगह में बैठकर अपना भोजन ढूँढ़ती है और वहीं उसके पंखों में छोटे छोटे जहरीले कीड़े सट जाते हैं यह तो हमको कलही हमारे साइंस मास्टर बता रहे थे।

गुणमाला-तब यदि वह मक्खी गरम दूध में गिरकर मर जाय तो वह दूध पीना चाहिये या नहीं ? तुम्हीं बताओ।

गुणधर-हरगिज नहीं। गुणमाला—तो बताओ तुम्हारे मामाजी ने वह दूध नहीं पिया, यह पुण्य किया या पाप?

गुणधर-इसमें पुण्य पापका क्या लेन देन, हाँ! वह दूध शरीर में जरूर नुकसान पहुँचाता, इसलिये अच्छा ही किया जो उसे छोड़ दिया और यदि मालूम न होता और मक्खी सहित दूध पी जाते तो फौरन कै हो जाती, तथा बड़ी देर तक जी मिचलाता रहता।

गुणमाला-बस भइया! इसी का नाम पुण्य पाप है। सुनो, दूध पीने से कै हो जाती और जी मिचलाता, जब तुम यह समझ गये, तो इतना और समझ लो, कि मनुष्य अपनी रक्षा या पर की रक्षा के लिये जो काम कर सकता है वहीं पुण्य है। क्योंकि पुण्य का फल सुख शान्ति है जिस काम में सुख शान्ति सुरक्षित रहे, न्याय मार्ग न कुचला जाय, वही पुण्य है और जिसमें दुःख क्लेश, या अशान्ति उत्पन्न हो, अन्याय—अनीति मार्ग की पुष्टि हो, वही पाप है।

गुणधर-मामी! कमाल कर दिया आपने! ऐसी सुन्दरता से मेरे गले उतारा कि मुझे अब सारी व्यवस्था जँच गई। इसलिये हमारी माँ बार बार हमको रात को खाने के लिये रोकती थी। क्योंकि दीपक या बिजली की रोशनी

में बहुत ज्यादा जीव आते हैं। और कुछ तो ऐसे होते हैं कि दिखाई भी नहीं देते। और वे भोजन के साथ पेट में चले जाते हैं। आज कल इसका जरा भी विचार हम लोगों को नहीं रहा, जब हम अपनी ही रक्षा नहीं कर पाते तो दूसरों की रक्षा का ख्याल रहना तो हमारे लिये महान् कठिन काम होगा।

गुणमाला–भइया! जैसा तुम्हें जीने का अधिकार है, वही अधिकार क्या उन जीवों को नहीं है?

गुणधर—मामी! हम में तो ज्ञान है पर इन कीड़े मकोड़े में क्या ज्ञान है? देखो न, इस बिजली के लट्टू पर कितने पतंगे मंडरा रहे हैं यदि ये इतना जान पाते, कि हम लट्टू से सट जावेंगे तो मर ही जावेंगे। तो इसके पास क्यों आते।

गुणमाला—भइया! ये शराबी, शराब क्यों पीते हैं? अफीमची, अफीम क्यों खाते हैं? चण्डू खानों में चण्डू पीने लोग क्यों दौड़े जाते हैं? बीड़ी सिगरेट पीने वाले लाखों रुपये भारत का क्यों बरबाद करते हैं? बता सकते हो इसका असली कारण?

गुणधर–क्यों नहीं बता सकता। ये सब के सब उल्लू हैं? बत्तमीज,हैं। मूर्ख हैं जो जान बूझ कर मरने जाते हैं।

गुणमाला-भइया गुणधर! तब तुम्हीं सोचो, कि जब पाँच इन्द्रिय और मनवाले जीव सोचने समझने का ज्ञान होते हुए भी इन्द्रियों का विषय पूरा करने, या आदत से लाचार होकर ऐसे ऐसे खोटे काम करते हुए आनन्द मानते हैं। तो ये पतंगे भी आँखों को सुख देने इस लट्टू के पास दौड़े चले आते हैं इन्हें रोशनी बड़ी प्यारी लगती है। तुम एक दीपक को उठा कर एक जगह से दूसरी जगह ले जाओ तो ये बारात की तरह उसके पीछे भागते हैं वह इनका प्रिय पदार्थ है। मर जावेंगे! पर दीपक का साथ न छोड़ेगें। जब मनवाले जीवों का वह हाल है तब तो ये चार इन्द्रियवाले असैनी जीव हैं।

श्रीचन्द्र-माता जी! इन्द्रियाँ कितनी होती हैं?

गुणधर-ठहरो भाई! मुझे पहले समझ लेने दो, हाँ! मामी! तो क्या इनके मन नहीं होता, ये बिना विचारे दीपक के पीछे दौड़ते हैं।

गुणमाला-हाँ भाई! कुछ ऐसे भी संसार में जन्तु हैं जो एक एक इन्द्रिय की लालसा से बिना मौत मरते हैं। जरा ध्यान से सुनों मैं तुम्हें उनकी सारी बाते समझाती हूँ। इन्द्रियाँ पाँच हैं और उनके पाँच ही विषय हैं। स्पर्शन इन्द्रिय - जिससे यह जीव गरम, ठंडा, हलका, भारी, रूखा, चिकना,

कोमल कठोर जानता है। यह ऐसी इन्द्रिय है कि शरीरधारी सभी प्राणियों में पाई जाती है। और शरीर के ऊपरी चमड़े पर सारे शरीर में रहती है। यही कारण है कि इस इन्द्रिय से अग्नि की गरमी से या कठिनस्पर्श से संसारी प्राणी अपने को बचाता रहता है। मानलो यह एक चौकी है उसके बीचोंबीच एक जलती हुई आगी का अंगार रखदो और चींटी को एक किनारे कोने में रखदो, तथा दूसरे कोने में गुड़ की एक ढेली रखदो, तो चींटी सीधी कभी न जावेगी। वहाँ तक जावेगी जहाँ तक उसे अग्नि की गरमी लगेगी, वह अग्नि बचाकर गुड़ के पास पहुँचेगी और गुड़ में से एक अपने से चलने वाला हल्का सा टुकड़ा लेकर एक ओर चल देगी और जहाँ उसे निरापद स्थान मिलेगा वहीं उसे रख आवेगी। इसी तरह वह गुड़ को तब तक ढोती रहेगी, जब तक गुड़ वहाँ पड़ा रहेगा। साथही साथ खाती भी रहेगी। चींटी के तीन इन्द्रियाँ होती हैं। स्पर्श इन्द्रिय से वह सर्दी गर्मी आदि का ज्ञान करती है। रसना-जीभ से वह स्वाद लेती है और तीसरी नासिका, से वह सूँघ सूँघ कर अपना खाना खोजती है। तुम पिसा नमक और दानेदार चीनी को पाटा पर अलग-अलग रख कर देखो, चींटी चीनी पर जायगी, नमक पर नहीं। मीठे पर चींटी की बड़ी रुचि होती है। भौंरा के आँख इन्द्रिय चींटी से ज्यादा

होती है। उसे फूलों की सुगंध और रस बहुत प्यारा होता है। इसलिये वह अकसर रात में कमल के अन्दर रहजाता है। जब कि रात में कमल बन्द हो जाता है। सवेरे कमल खुलने पर गुनगुना कर रस पीकर उड़ जाता है। इसीतरह ये पतंगे भी चार इन्द्रिय वाले हैं इन्हें रूप बड़ा प्यारा लगता है। इनकी आँखों को उजेला बड़ा सुहावना लगता है। इसलिये ये दीपक के पास खिंचे चले आते हैं। इसी तरह हरिण और सर्प को कान का विषय बहुत अच्छा लगता है। इसलिये बहेलिया जंगल में जाकर जब सुरीली बंशी बजाता है तब हरिणों के झुंड के झुंड आकर खड़े हो जाते हैं और प्राण गँवाते हैं तथा नाथ की बंशी सुनकर बड़े से बड़े विषधर सर्प उसके चुंगल में फँस जाते हैं। भाइयो! ये इन्द्रियों के विषय इतने बलवान हैं कि बड़े बड़े विद्वानों को भी पागल बना देते है, एक विद्वान् ने कहा है। 'बलवान् इन्द्रियग्रामः विद्वांसमप्यपकर्षति।'

गुणधर बोला—मामा! आप का ज्ञान इतना सुन्दर है, कि आपने तो हमारे दिमाग को ही बदल दिया। आह! इतना सुन्दर आपने कहा, कि इच्छा होती है आपके पैर चूम लूं। आज तो मैं जाता हूँ फिर कभी आकर आपसे बातें करूँगा। पर आपके सामने एक प्रतिज्ञा तो कर ही जाऊँ, कि आज से मैं रात्रि में कभी न खाऊँगा। मुझे इन जहरीले कीड़ों की बात सुनकर बड़ी घृणा हो गई है।

गुरु गोपालदास जी ७

एक दिन विमलदास ने श्रीचन्द्र को एक फोटो दिखा कर कहा—श्रीचन्द्र तुम जानते हो ये महापुरुष कौन हैं ?

श्रीचन्द्र पिताजी ! माताजी से इनका नाम तो मैंने सुना है। पर इनके विषय में मैं कुछ भी नहीं जानता।

विमलदास—बेटा ! ये मेरे गुरुजी हैं। मैं मोरेना में इन्हीं के पास पढ़ा हूँ। इन्होंने एक बहुत बड़ा विद्यालय मोरेना में खोला है।

श्रीचन्द्र–क्या ये आज भी जीवित हैं ?

विमलदास—नहीं बेटा, इनको स्वर्गवासी हुए ३०-३५ वर्ष होगये पर इनका विद्यालय आज भी इनका गुण गा रहा है।

श्रीचन्द्र—पिताजी ! इनमें ऐसा क्या गुण था जिससे आप आज भी इनका इतना आदर करते हैं।

विमलदास—(हायस्वास लेकर) क्या बताऊँ बेटा ! गुरुजी जैसा सदाचारी और कर्तव्यपालनेवाला आज तक कोई दूसरा विद्वान् उनके बाद अपने समाज में नहीं हुआ। सचमुच गुरुजी केवल विद्वान् ही नहीं थे। बल्कि गुणों और सदाचार के सजीव मूर्ति थे।

श्रीचन्द्र–पिता जी मुझे उनके गुणों के सुनने की

बड़ी इच्छा है। अतः उनके कुछ मुख्य अनुकरणीय गुणों का परिचय कराने की कृपा कीजिये।

विमलदास—करीब ४० वर्ष की पुरानी बात है—एक बार गुरुजी अपने कुछ चुने शिष्यों को साथ लेकर इन्दौर गये थे। वहाँ रायबहादुर सेठ कल्याणमलजी एक जैन हाईस्कूल खोलने का आयोजन कर रहे थे। वहाँ बड़े बड़े विद्वान् एवं विचारक उपस्थित थे। गुरुजी ने अपने एक भाषण में कहा था, कि नागरिकों के नियम आत्मदर्शन ने जितने उत्तम बनाये हैं दूसरे बनाकर भी नहीं बना सके।

इतने में ही अमरचन्द्र आगया और बोला मौसाजी! क्या बात चल रही है?

विमलदास ने कहा—आओ बेटा, तुम भी सुन लो गुरु गोपालदास जी के जीवन की एक घटना सुना रहा हूँ। अभी शुरू ही की है। हाँ! तो मैं कह रहा था, कि गुरुजी ने एक सार्वजनिक भाषण में कहा था कि शुद्ध नागरिकता का पाठ सब से प्रथम आत्मदर्शन ने ही संसार को पढ़ाया था। क्योंकि उन्होंने नागरिकता का बहुत बारीकी से अध्ययन किया था और ऐसे सिद्धान्त स्थिर किये, कि वे ही कर्तव्य; जो एक साधारण नागरिक को आंशिक पालन करने में सारी दुनियावी झंझटों से बचा देते हैं, वे ही कर्तव्य सतर्क होकर पूर्णतया पालन करने वाले योगी को पूर्ण स्वतंत्र कर देते हैं।

अमलचन्द्र—मौसाजी ! गृहस्थ मार्ग योगी से बिलकुल जुदा है। योगी निरीह-और निष्पृह होते हैं। और गृहस्थ माया, ममता और सांसारिक उलझनों में उलझे होते हैं। दोनों का एक कर्त्तव्य कैसे हो सकता है !

विमलदास—सुनो अमल ! यही तो आत्मदर्शन के तत्त्वज्ञान में तारीफ है कि वह ऐसा लक्ष्य चुनता है जिससे उसे कभी अपना रवैया न बदलना पड़े और हर हालत में लक्ष्य के नजदीक पहुँचता जाय।

श्रीचन्द्र—पिताजी ! गृहस्थ का काम कमाना-खाना है, योगी का काम योगसाधन करना है। दोनों का लक्ष्य एक कैसे हो सकता है ? भैया ठीक ही तो कह रहे हैं।

विमलदास—बच्चो ! तुम दोनों मेरी बातें सुन जाओ, तुम्हारे इन्हीं प्रश्नों को तो गुरुजी ने आम सभामें स्पष्ट किया था।

हाँ ! तो गुरुजी बोले, भाइयो ! आत्मदर्शन वालों ने आत्मा की जो रूपरेखा अनुभव की है वह है त्रिवेणी-गंगा, यमुना, सरयू की तीन धाराओं का एकीकरण। उद्गम स्थान भले ही चाहे इनके विभिन्न हों, पर सम्मिलित होकर इनकी महाधारा समुद्र में मिलती है। ठीक इसी तरह गृहस्थ, साधु, रोगी, भोगी, संयोगी, वियोगी, सबको अन्त में एक ही रास्ते पर चलना होगा, अन्यथा उनका मार्ग उलझाने वाला बन

जायगा, मानलो देवदत्त बाल्यकाल में चोरी करना सीख गया, तो वह तब तक सफल गृहस्थ नहीं बन सकता, जब तक वह चोरी करना न छोड़े। चाहे देवदत्त महान् पण्डित, या बहुत बड़ा धनवान, या बहुत बड़ा महात्मा बन जाय, यदि उसमें चोरी करने की आदत है तो वह कभी सफल जीवन नहीं बिता सकता, उसे हर पद में नीचा देखना पड़ेगा। अब आप लोग बतलावें कि चोरी करना दोष है या गुण ?

दोनों लड़के एक स्वर से बोले—दोष !

विमलदास–गृहस्थ या साधु दोनों का दूषण है या भूषण

दोनों—दूषण।

विमलदास-बस ! फैसला हो चुका, जो चोरी गृहस्थ को मार खिलाती है वही चोरी साधु को भी कर्मों की मार खिलाती है। अतः गृहस्थ स्थूलरूप से उसका त्याग करता है—अर्थात् किसी की गिरी, पड़ी; भूली हुई चीजें नहीं उठाता, तब डाका या सेंध लगाकर चोरी तो कर ही कैसे सकता है। गर्ज यह है, कि गृहस्थ विना मालिक के दिये कोई चीज़ किसी की न लेगा और साधु तो मन में भी न लायेगा, कि दूसरे के द्रव्यों को ले लूं। वह तो पूर्व से ही संसार के सभी पदार्थ त्याग कर देता है, तब वह मन, वचन, काय से परपदार्थ अर्थात्—अपने शरीर, कर्म, ज्ञान संयम के उपकरण-पीछी कमंडलु पुस्तक आदि को न लेगा

न लेने की इच्छा ही करेगा। और जिन परपदार्थों से पूर्व संस्कारवश मोह है उसके भी त्याग करने की हर समय चेष्टा करेगा। यही उसका अचौर्य महाव्रत कहलावेगा। इसी तरह हिंसा—जीवों के मारने का त्याग, असत्य-झूठ बोलने का त्याग, परस्त्री का त्याग, जरूरत से ज्यादा कपड़े, गाय, भैंस आदि का त्याग गृहस्थ करेगा, साधु इन्हीं पापों का सर्वथा त्याग करेगा। अब तुम बताओ अमल क्या इन पांच पापों का त्याग करना ही सच्ची नागरिकता नहीं तो क्या है? जिनसे राज्य दंड, पचायती दंड, दूसरों को दुःख हो, अपने को सदा भय रहे, तथा भेद खुल जाने पर अपराधी बनना पड़े, ये ही तो पाप हैं। इनके त्याग से नागरिक खुद सुखी रहता है तथा अपने पड़ोसियों या गाँव वालों को सुखी देखना चाहता है। तब उसे इनका त्याग, या सेवन, क्या करना चाहिये?

अमलचन्द्र–मौसाजी! सचमुच संसार में ये ही तो बड़े पाप हैं। गृहस्थों को इनसे खुद बचना चाहिये और अपने सहयोगियों को बचाना चाहिये।

विमलदास--गुरुजी में ये सारे गुण थे, वे हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों से सदा अपने को बचाते रहते थे। जब हम लोग इन्दौर से लौटने लगे तो गुरुजी खँडुवा स्टेशन पर जल्दी में कुली को आठ

आना पैसा न दे पाये और बंबई मेल चल दी। तब गुरुजी ने मोरेना पहुँच कर स्टेशनमास्टर के नाम आठ आना भेज दिये और कुली का नम्बर लिख दिया, तथा पत्र में स्टेशनमास्टर को यह भी लिखा, कि कृपया उस कुली से पैसे पाने की रसीद लेकर भेज दें। इसके लिये अपने पते का एक कार्ड लिफाफा में रख कर भेज दिया।

भूपाल स्टेशन पर एक सज्जन उतरे और हड़बड़ी में वे अपना बक्स गाड़ी में छोड़ते गए, गुरूजी ने गाड़ी से उतर कर उन्हें तलाश किया। जब वे स्टेशन पर न मिले, तो उनके बक्स के ताले पर अपने सामने स्टेशनमास्टर-भूपाल से सील करवा कर उसे स्टेशनमास्टर के आफिस में जमा करवा दिया और रसीद लेकर उनके पास उज्जैन भेज दी। उसके उत्तर में जिनका बक्स था उन सज्जन ने गुरुजी को बड़ा धन्यवाद दिया। और लिखा, कि उस बक्स में मेरा दस हजार का जवाहरात था। जो मैं बम्बई से खरीद कर लाया था। ऐसे थे हमारे गुरुजी।

एक बार की बात है, कि गुरुजी से किसी व्यापारी ने आकर पूछा-गुरुजी! हमने सुना है कि आप आगरे जा रहे हैं?

गुरूजी ने कहा—हाँ! जा तो रहा हूँ।

उसने कहा--२००५ चना हमको खरीद कर किसी

आढ़तिया के यहाँ रख दें और हमारे ऊपर हुंडी कर उसका भुक्तान दे दें।

गुरुजी ने कहा—बहुत अच्छा। जब कि गुरुजी स्वयं चना खरीदने आगरे जा रहे थे। आगरे के बाजार में उन्हें २५०) ही चना मिला। उन्होंने २००) मन उसके नाम खरीद कर दिया और ५०) अपने नाम से रखवा दिया और २००) मन के दामों की हुंडी कर भुक्तान दे दिया, अगले दिन ही चना का दाम ड्योढ़ा हो गया। जिसे गुरुजी पहले ही जानते थे। पर उन्होंने अपने सत्याचरण में जरा भी कमी न आने दी।

जब वे मोरेना आये, तो उस व्यापारी ने आकर कहा कि हमने आपका बम्बई का तार डाकखाने में पढ़ लिया था, इसलिये आपसे चना खरीदने को कहा था। यह सब चना आप का ही है।

गुरुजी ने कहा—चाहे कुछ हो, मैं आप के आर्डर से चना खरीद आया हूँ अब वह आप का ही है। मुझे इसका जरा भी ख्याल नहीं, कि आपने मेरा तार पढ़ कर मुझसे कहा था, यह तो व्यापार है। आप के लिये मैं अपना स्वभाव नहीं बदल सकता। गुरुजी के इस व्यवहार से दुकानदार बड़ा लज्जित हुआ। और जब तक जिया, गुरुजी की प्रशंसा करता रहा।

अमलचन्द्र ने कहा–तब तो गुरुजी सच्चे पण्डित थे। उन्होंने जो जाना उसे अपने जीवन में उतारा, यही तो वास्तव में आत्मदर्शन है कि "अपने पथ से भ्रष्ट न हो।"

श्रीचन्द्र बोला–तब तो गुरुजी, केवल विद्वान ही नहीं थे बल्कि बहुत बड़े सदाचारी थे।

विमलदास–गुरुजी सच्चे सदाचारी, उदारमना और सच्चे भगवद्भक्त एवं कर्तव्यपरायण नरश्रेष्ठ थे। उन्होंने अपने जीवन में धर्माचरण को उतार कर अपने शिष्यों के सामने महान् आदर्श उपस्थित किया था।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी =

अहिंसा और सत्य के प्रचारक

अध्यापक—प्रिय विद्यार्थियों! आओ आज हम तुम्हें राष्ट्रपिता गांधीजी के जीवन की कुछ चुनी हुई बातें बतावें जिससे तुम यह जान सको कि जैसे बालक, स्वभाव से कमजोर और अल्पज्ञ होते हैं। गांधीजी भी उसी तरह के कमजोर और मिथ्याप्रभाव में आने वाले थे। पर गांधीजी के जीवन में बाल्यकाल से ही ऐसी बात थी जो उन्हें इतना बड़ा ले गई! वह थी उनकी दृढ़ता और विचार-

शक्ति। जब गाँधीजी चौथे दरजे में पढ़ते थे तो उन्हें संस्कृत बड़ी कठिन मालूम हुई। वे लिखते हैं कि:—

"संस्कृत मुझे रेखागणित से भी अधिक मुश्किल मालूम पड़ी। रेखागणित में तो रटने की कोई बात न थी; परन्तु संस्कृत में मेरी दृष्टि से, अधिक काम रटने का ही था। यह विषय भी चौथी कक्षा से शुरू होता था। छठी कक्षा में तो मेरा दिल बैठ गया। संस्कृत-शिक्षक बड़े सख्त थे, विद्यार्थियों को बहुतेरा पढ़ा देने का उन्हें लोभ था, संस्कृत और फारसी के दर्जे में एक प्रकार की प्रतिद्वंद्विता थी। फारसी के मौलवी साहब नरम थे। विद्यार्थी आपस में बातें करते, कि फारसी तो बहुत सरल है और फारसी के अध्यापक भी बड़े सज्जन हैं। विद्यार्थी जितना काम कर लाते हैं उतने से ही वे निभा लेते हैं। सहज होने की बात से मैं भी ललचाया और एक दिन फारसी के दरजे में जा कर बैठा। संस्कृत शिक्षक को इससे दुःख हुआ और उन्होंने मुझे बुला-कर कहा—"तुम सोचो तो कि तुम किसके लड़के हो? अपनी धार्मिक भाषा नहीं सीखोगे? अपनी कठिनाई को मुझे बताओ। आगे चल कर उसमें रस-ही-रस है। तुमको इस तरह निराश न होना चाहिये। तुम फिर मेरे दरजे में आओ।"

मैं शरमाया। शिक्षक के प्रेम की अवहेलना न कर सका। आज मेरी आत्मा कृष्णशंकर पांड्या का कृतज्ञ

है; क्योंकि जितनी संस्कृत मैंने उस समय पढ़ी थी, यदि उतनी भी न पढ़ी होती तो आज मैं संस्कृत शास्त्रों का जो आस्वाद कर पाता हूँ वह न कर पाता। बल्कि अधिक संस्कृत न पढ़ सका, इसका पछतावा होता है। क्योंकि आगे चल कर मैंने समझा कि किसी भी हिन्दू बालक को संस्कृत के अध्ययन से वंचित नहीं रहना चाहिये।"

गाँधीजी को एक बार माँस खाने की सलाह उनके एक कुमित्र ने दी और वे अपनी मानसिक कमजोरियों से फिसल गये। वे अपनी जीवनी में लिखते हैं कि–"नियत दिन आया। उस दिन की अपनी हालत का वर्णन करना कठिन है। एक तरफ था 'सुधार' का उत्साह और जीवन में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन करने की नवीनता और दूसरी ओर था, चोर की भाँति छिप कर काम करने की शर्म। मैं नहीं कह सकता, कि इसमें किसकी प्रधानता थी। हम लोग नदी की ओर एकान्त की खोज में चले। दूर जा कर ऐसा कोना तलाश किया जहाँ कोई देख न सके, और वहाँ मैंने कभी न देखा हुआ माँस देखा। साथ में भटियारे के यहाँ की डबल रोटी थी। दो में से एक भी चीज न भाई, माँस चमड़े सा लग रहा था। खाना असम्भव हो गया, मुझे कै आने लगी। खाना छोड़ देना पड़ा। मेरी

वह रात बड़ी कठिनाई से कटी। नींद किसी तरह न आती थी। स्वप्न में ऐसा मालूम होता था मानो बकरा हमारे शरीर के भीतर जिंदा चिल्लाता है। मैं चौंक चौंक उठता पछताता।" इस तरह गाँधीजी के कुमित्रने उन्हें एक वर्षतक बहकाया। इसी दरम्यान महात्मा जी को सिगरेट का भी शौक लगा, वे लिखते हैं कि :—

"अपने एक रिश्तेदार की सोहवत से मुझे सिगरेट पीने का शौक हुआ। पैसे तो हमारे पास थे नहीं। सिगरेट पीने के किसी फायदे या उसके गंध के मज़े से तो हम दोनों में से कोई भी परिचित नहीं था। पर धुआँ उड़ाने में ही कुछ मजा आता था। मेरे चाचाजी को सिगरेट की आदत थी, और उन्हें तथा औरों को धुआँ उड़ाते हुए देख कर हमें भी फूंक लेने का शौक हुआ। मेरे पास पैसे न होने के कारण चाचाजी की सिगरेट के बचे फेंके हिस्से को चुराना शुरू किया। परन्तु वे टुकड़े कुछ हमेशा नहीं मिल पाते थे, और उसमें से कुछ ज्यादा धुआँ नहीं निकल सकता था। इसलिये नौकरों की जेबों में पड़े दो चार पैसे में से हम बीच-बीच में एकाध पैसा चुराने लगे और उससे सिगरेट पीने लगे। पर छिपाकर रखने की समस्या सामने आई। इतना ख्याल था कि बड़े-बूढ़ों के सामने सिगरेट पीना सम्भव नहीं है। ज्यों त्यों

दो चार पाई पैसे चुरा कर कुछ हफ्ते काम चलाया, इसी बीच सुना, कि एक पौधा (उसका नाम भूल गया) होता है जिसका डंठल सिगरेट की तरह जलता है, वह पिया जा सकता है। हमने वह लाकर धुआँ उड़ाना शुरू किया पर हमें संतोष न हुआ। अपनी पराधीनता हमें खलने लगी। यह कष्टदायक हो गया कि बड़ों की आज्ञा बिना कुछ भी न हो सके। हम परेशान हो गये और आत्म-हत्या करने का निश्चय किया। परन्तु आत्महत्या कैसे करें? जहर कहाँ से आवे। हमने सुना कि धतूरे के बीज से मृत्यु होती है। जंगल में घूम फिर कर बीज लाये। खाने का समय शाम को रखा। केदारजी के मंदिर में घी चढ़ाया, दर्शन किये और एकांत में गये; पर जहर खाने की हिम्मत न हुई। तत्काल मृत्यु न हो तो मरने से लाभ क्या होगा? पराधीनता में ही क्यों न पड़े रहें? ये विचार मन में आने लगे। फिर भी दो चार बीज खा डाले, पर ज्यादा खाने की हिम्मत न हुई।

हम दोनों मौत से डर गये। निश्चय किया रामजी के मंदिर में दर्शन करें और शान्ति से बैठें और आत्म-हत्या की बात मन से भुलादें। तब मैंने यह समझ लिया कि आत्महत्या का विचार करना सरल है, पर आत्म-हत्या नहीं। इससे जब कोई आत्महत्या करने की धमकी

देता है, तब मुझ पर उसका बहुत कम असर होता है, या यह भी कह सकता हूँ कि बिलकुल नहीं होता। आत्महत्या के निश्चय का एक परिणाम यह हुआ कि हमारी जूठी सिगरेट चुराकर पीने की आदत ही जाती रही। बड़ा होने पर मुझे कभी सिगरेट पीने की इच्छा ही नहीं हुई और मैं सदा इस आदत को जंगली, हानिकारक और गंदी मानता आया हूँ।

अब तक यह समझ ही न पाया कि सिगरेट, बीड़ी का इतना जबर्दस्त प्रचार दुनिया में क्यों है? रेल के जिस डिब्बे में बीड़ी, सिगरेट का धुआँ उड़ता है वहाँ मेरा बैठना कठिन हो जाता है और उसके धुएँ से मेरा दम घुटने लगता है। सिगरेट के टुकड़े और उसके लिए नोकरों के पैसे चुराने के अपराध के सिवा अन्य एक चोरी का जो अपराध मुझसे बन पड़ा, उसे मैं अधिक गंभीर मानता हूँ। सिगरेट के अपराध के दिनों तो मेरी उम्र १२-१३ वर्ष की होगी, शायद इससे भी कम हो। दूसरी चोरी के समय १५ साल की होगी। यह चोरी थी मेरे माँसाहारी भाई के सोने के कड़े के टुकड़े चुराने की। उन्होंने करीब २५) के लगभग कर्ज कर लिया था। हम दोनों भाई इसे चुकाने के चक्कर में पड़ गये। मेरे भाई के हाथ में सोने का एक ठोस कड़ा था। उसमें से तोला भर सोना काट लेना कठिन न था। कड़ा कटा और कर्ज निपट गया; पर मेरे लिये यह बात असह्य हो

गई। आगे से चोरी न करने का निश्चय मैंने किया। यह भी सोचा कि पिताजी के सामने इसे कबूलना चाहिये, पर जबान खुलनी कठिन थी। यह डर भी नहीं था कि पिताजी मुझे पीटेंगे। क्योंकि नहीं याद पड़ता कि उन्होंने हम भाइयों में से किसी को कभी पीटा हो, पर यह डर जरूर था कि वह खुद बड़े दुखी होंगे और शायद सिर धुन डालेंगे तो? पर सोचा कि यह खतरा उठाकर भी अपना दोष स्वीकार करना ही उचित है। ऐसा लगा कि इसके बिना शुद्धि न होगी।

अंत में मैंने पत्र लिखकर दोष स्वीकार करते हुए माफी मांगने का निश्चय किया। मैंने पत्र लिखकर अपने हाथ से उन्हें दिया। पत्र में सब दोष स्वीकार किया था और दंड मांगा। इसके लिये विनय की, कि मेरे अपराध के लिये अपने को कष्ट में न डालें और प्रतिज्ञा की थी कि भविष्य में ऐसा अपराध फिर न करूँगा।

मैंने अपने हाथों से वह पत्र पिताजी के हाथ में दिया। मैं उनके तख्त के सामने बैठ गया। उन्होंने पत्र पढ़ा। आँखों से पानी की बूंदें टपकीं, पत्र भीग गया। तनिक क्षण के लिए उन्होंने आँखें मूंदीं, और पत्र फाड़डाला, तथा पत्र पढ़ने बैठे हुए थे सो फिर लेट गये। मैं भी रोया। पिताजी की पीड़ा का मैंने अनुभव किया। इस मुक्तबिन्दुओं

के प्रेमवाण ने मुझे बेंध दिया। मैं शुद्ध हो गया। इस प्रेम को वही जान सकता है, जिसे अनुभव हुआ हो।

मेरे लिये यह अहिंसा का पदार्थ-पाठ था। उस समय तो मुझे इसमें पितृप्रेम का ही अनुभव हुआ था; पर आज मैं इसे शुद्ध अहिंसा का नाम दे सकता हूँ। ऐसी अहिंसा के व्यापक रूप धारण करने पर उससे कौन अछूता रह सकता है। ऐसी व्यापक अहिंसा की शक्ति का अनुमान करना शक्ति से परे है। ऐसी शान्तिमय क्षमा पिताजी के स्वभाव के प्रतिकूल थी। मैंने सोचा, कि वह गुस्सा होंगे, फटकारेंगे, शायद अपना सिर भी धुनलें; पर उन्होंने तो असीम शान्ति का परिचय दिया। मैं समझता हूँ कि "यह दोष की शुद्ध हृदय से की गई स्वीकृति का परिणाम था"

जो मनुष्य अधिकारी शक्ति के सामने स्वेच्छापूर्वक अपने दोष शुद्ध हृदय से कह देता है और फिर कभी न करने की प्रतिज्ञा करता है वह मानों शुद्धतर प्रायश्चित्त करता है। मैं जानता हूँ, कि मेरे इस इकरार से पिताजी मेरे सम्बन्ध में निर्भय हो गये और उनका प्रेम मेरे प्रति और बढ़ गया।

अध्यापक—भगवद्गीता में स्पष्ट लिखा है कि :—

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥३६॥

अभ्यास के लिए

महात्मा गाँधी कौन थे ? उनका बाल्य जीवन कैसा था ?
उन्होंने पिता के सामने क्या किया ? अहिंसा का क्या अर्थ है ?
क्या तुम गाँधीजी के जीवन से कुछ शिक्षा ले सकते हो ?
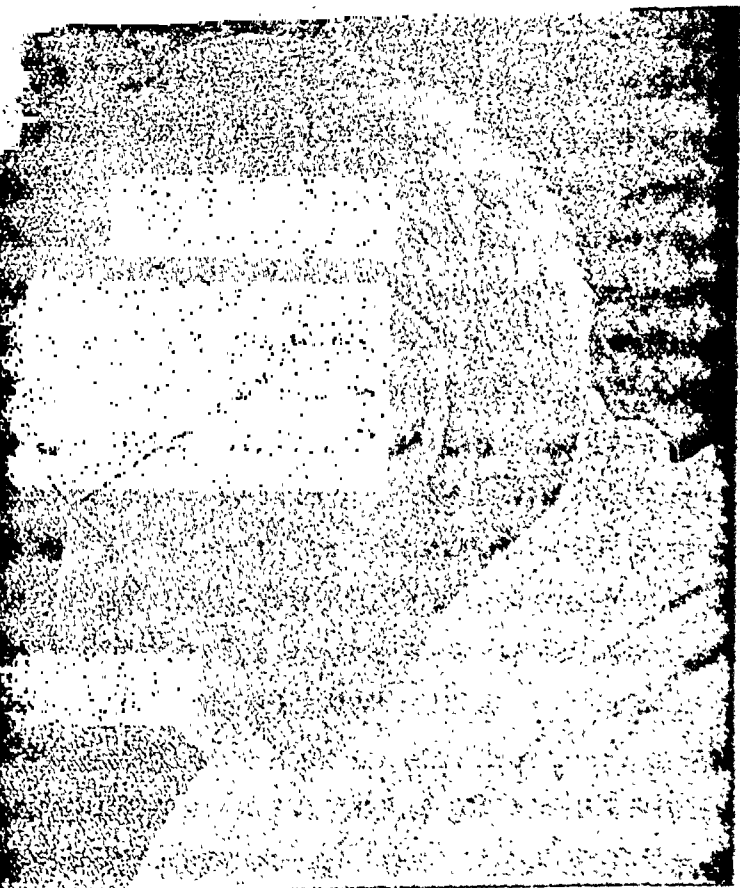
सन्त हृदय ९

सज्जन सत्‌जन ही हैं वे करते सदा
पापी का उद्धार सरल निज कृत्य से
खल की दुष्कृतियों पर देकर दान को
ग्रहण दिवस में करते प्रायश्चित्त हैं ॥ १ ॥

मलयज शाखी त्रास प्राप्त करता सदा
तौ भी क्या वह परिमल देना भूलता ?
पत्थर की चोटें खाकर सहकार क्या ?
पके सुफल देता नहीं निःसकोच हो ॥२॥

संत जनों की प्रथा सदा ये ही रही
कोल्हू में पिलकें भी देवें स्वरस को !
क्योंकि प्रकृति ने ज्ञान उन्हें ये ही दिया
निज कृतियों का दान सदा करते रहें ॥३॥

सुधा, गरल में भेद बड़ा है एक ही
गरल रूप में रक्त सुधा होती नहीं
किन्तु गरल का रूप भावना प्रचुर से
बदला देखा सुधा रूप में जगत ने ॥४॥

अभ्यास के लिए

सन्तों का हृदय कैसा होता है ?
क्या तुम स्वयं सन्त नहीं बन सकते ?
सन्तों में कौन से गुण हमसे अधिक होते हैं ?
किसी सन्त का परिचय अपनी किताब में से दो ?

लेखक के अप्रकाशित पार्श्वनाथ काव्य से ।

गुणमाला १०

श्रीचन्द्र—माँ! आज मुझे कुछ लिखवा दो।

माता—क्या लिखोगे बेटा!

श्रीचन्द्र—आज मैं जो पूछूँ उसका उत्तर ऐसा होना चाहिये जिसे मैं किताब पर लिख कर याद कर लूँ। जिससे कभी कोई पूँछे, तो मैं थोड़े में आत्म दर्शन के खास खास सिद्धान्त बता सकूं।

माता—ये क्यों नहीं कहता, कि आज तक तूने जो मुझसे सुना सीखा है उसे स्मरण रखने के लिये संक्षेप में लिख लेना चाहता है। अच्छा पूँछ, क्या पूँछना चाहता है।

श्रीचन्द्र—धर्म की रूपरेखा क्या है?

माता—सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः, १ संसार के पदार्थों में रहने वाले गुण धर्मों का सत्य स्वरूप समझ कर विश्वास करना, सद् अर्थात् सत्य की परख करने वाली—दृष्टि-देखने रूप ज्ञान धारा का दूसरा नाम सम्यग्दर्शन है।

२ सम्यग्ज्ञान—वस्तुओं की तहमें दृष्टि डालकर उसकी असलियत जान लेनाः सम्यग्ज्ञान है। जैसे एक आदमी रास्ता में चला जाता था, उसे एक गांठ दार टेढ़ी रस्सी दिखाई दी, उसे पहले भ्रम हुआ कि क्या ये सांप है

या रस्सी ? थोड़ी देर निगाह जमाकर उसने देखा, तब उसे पता चला, कि साँप नहीं यह तो रस्सी है। साँप होता, तो वह चैतन्य होने से हरकत करता। पर यह तो ज्यों का त्यों पड़ा है। तब उसने उसे अपने वेत से इधर उधर हटाया, जब उसे पूरा विश्वास हो गया, कि यह साँप नहीं; रस्सी है। तो वेखटके उसके पास से चला गया। इसी तरह पदार्थों का गहरा विचार करना यह सत्य गर्भित ज्ञान-सम्यग्ज्ञान है।

३ सम्यक् चारित्र–जिन क्रियाओं से आत्मा सम्यक्–अच्छे आचार में कायम रहे, उसे सम्यक् चारित्र कहते हैं। गृहस्थों के लिए पाँच पापों का स्थूल रूप से त्याग करना, अहिंसा, सत्य, अचौर्य्य, स्वदारसंतोष, परिमित परिग्रह ये पाँच पुण्यकृत्य करना चाहिये। जिससे हम भारत के सच्चे नागरिक वन सकें यही हमारा सम्यक् चारित्र है।

इन तीनों के द्वारा अपने को सही रास्ते पर रखना धर्म है।

श्रीचन्द्र–अम्माँ! उस दिन तो तुमने धर्म का अर्थ स्वभाव वताया था। और आज दूसरा वता रही हो?

माता–वेटा! जरा गौर से देखो। मैंने जो उस दिन वताया था, उसी को जरा स्पष्ट कर अब तुम्हें नोट कराया

है। बात ये है कि 'उपयोगो लक्षणम्' आत्मा का लक्षण है उपयोग और वह आत्मा का ज्ञान-जानने, दर्शन-देखने रूप आत्मा का स्वाभाविक परिणमन है। अनादि काल के मिले हुए कर्मों ने ऐसी गंदगी आत्मा में ला दी है जिससे आत्मा अपने को ठीक रास्ते पर चलाने में असमर्थ पाता है। तब दर्शनकारों ने उसे सरलमार्ग से सचाई की ओर मोड़ा है। धीरे धीरे जब यह आत्मा अपने स्वभाव को जान जायगा, तब वह सत्य पर आरूढ़ हो, उसपर अमल करने लग जायगा।

श्रीचन्द्र-माता जी! जीव कितने तरह के होते हैं?

माता-बेटा! संसार भर के जीव लक्षण की दृष्टि से एक ही प्रकार के हैं। छोटे पोधे से लेकर हाथी तक में एक सा जीव है। कोई भेद नहीं। पर ज्ञान की कमी और ज्यादती से उसमें वर्ग बना लिए जाते हैं जैसे तुम्हारे हाई स्कूल में ५०० विद्यार्थी हैं, यदि पढ़ने की अपेक्षा देखा जाय, तो सभी पढ़ने आते हैं। इसलिये हाईस्कूल के विद्यार्थी की दृष्टि से सभी समान हैं। पर कक्षाओं की दृष्टि से उनके अलग अलग विभाग हैं। यह भेद, ज्ञान की अपेक्षा से ही तो है। इसी तरह 'संसारिणो मुक्ताश्च,—जीव संसारी और मुक्त के भेद से दो वर्गों में विभक्त हुए। जिनके इन्द्रिय ज्ञान हो वे-संसारी। जिनको आत्मा का पूर्ण ज्ञान हो गया वे-मुक्त। जैसे-अरहंत, सिद्ध।

श्रीचन्द्र-क्या संसारी जीवों में नाना कक्षाएँ हैं ?

माता—'पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः'

पृथिवी—जमीन, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति ये पांच स्थावर एक इन्द्रिय वाले जीव हैं।

श्रीचन्द्र—त्रस कौन से हैं ?

माता—'द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः' दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय वाले जीव त्रस हैं। और वे 'कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि'। कीड़े, लट, तिरुला के स्पर्श, रसना, ये दो इन्द्रियाँ होती हैं। पिपीलिका-चींटी, चींटे, आदि, सूँघकर ही चलने वाले जीवों के स्पर्शन, रसना, नासिका, ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं। भ्रमर—भौंरा, वर्रें, पतंगा, दीपक पर या फूलों पर आने वाले जीवों की, स्पर्शन, जीभ, नासिका, नेत्र ये चार इन्द्रियाँ होती हैं। मनुष्यादि—मनुष्य, देव, नारकी, पशु, पक्षी आदि के; स्पर्शन रसना, नासिका, नेत्र, कान ये पाँच इन्द्रियाँ होती हैं। 'समनस्कामनस्काः' मन वाले जीव जो किसी बात को सोच समझ सकें, इशारा समझें, तर्क-वितर्क कर सकें जैसे हमलोग, देवलोक, पशु-पक्षी आदि, इन्हें सैनी, संज्ञी, या समनस्क हैं। २. बिना मनवाले—जो न तो शिक्षा या उपदेश को समझ सकें, न कोई बात

सोच सकें ऐसे जीव कोई कोई पानी वाला साँप, कठतोता या सूक्ष्म पंचेन्द्रिय जीव होते हैं।

श्रीचन्द्र–माँ! आज तुमने बड़े सुन्दर नोट कराये अब फिर अगले इतवार को लिखेंगे। हाँ! वह बात तो मैं भूल ही गया, तुमने एक दिन मंदिर में एक प्रार्थना भगवान् के सामने खड़े होकर पढ़ी थी वह और लिखवा दे माँ। वह मुझे बड़ी अच्छी लगी थी मैं भी उसे कण्ठ कर लूँगा।

माँ उसका नाम 'मेरी भावना' है यह जैन समाज के एक बड़े खोजी विद्वान् ने लिखी है। यों तो वह बहुत बड़ी है पर जितना अंश उसका मुझे अच्छा लगा, तुझे लिखवा देती हूँ।

मेरी भावना के कुछ पद्य

जिसने राग द्वेष कामादिक जीते सब जग जान लिया
सब जीवों को मोक्षमार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो
भक्ति भाव से प्रेरित हो, यह चित्त उसी में लीन रहो ॥१॥
विषयों की आशा नहिं जिनके साम्य-भाव धन रखते हैं
निज पर के हित साधन में जो निशदिन तत्पर रहते हैं
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के दुख समूह को हरते हैं ॥२॥
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे!
उन हीं जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे।

नहीं सताऊँ किसी जीव को झूठ कभी नहिं कहा करूँ
पर धन वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ ॥३॥
अहंकार का भाव न रक्खूँ नहीं किसी पर क्रोध करूँ
देख दूसरों की बढ़ती को कभी न ईर्ष्याभाव धरूँ
रहे भावना ऐसी मेरी सरल सत्य व्यवहार करूँ
बने जहाँ तक इस जीवन में औरों का उपकार करूँ ॥४॥
मैत्रीभाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे
दीन-दुःखी जीवों पर मेरे उर से करुणा-स्रोत बहे
दुर्जन क्रूर कुमार्ग-रतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर ऐसी परणति हो जावे ॥५॥
गुणीजनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे
बने जहाँ तक उनकी सेवा कर के यह मन सुख पावे
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं द्रोह न मेरे उर आवे
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित दृष्टि न दोषों पर जावे ॥६॥
कोई बुरा कहो या अच्छा लक्ष्मी आवे या जावे
लाखों वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे
अथवा कोई कैसो ही भय या लालच देने आवे
तो भी न्याय मार्ग से मेरा कभी न पद डिगने पावे ॥७॥
हो कर सुख में मग्न न फूले दुःख में कभी ना घबरावे
पर्वत, नदी, श्मशान भयानक अटवी से नहीं भय खावे
रहे अडोल अकंप निरन्तर यह मन दृढ़तर बन जावे
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में सहनशीलता दिखलावे ॥८॥
सुखी रहें सब जीव जगत के कोई कभी न घबरावे
वैर पाप अभिमान छोड़ जग नित्य नये मंगल गावे
घर घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर हो जावें
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना मनुज जन्म फल सब पावें ॥९॥

अभ्यास के लिये

परमात्मा की रूपरेखा क्या है ? तुम भगवान् से क्या चाहते हो ? साधु किसे कहते हैं ? इन्द्रिय किसे कहते हैं ? इन्द्रियाँ कितनी हैं ? पाँचों इन्द्रिय के विषय बताओ ? ऐसे जीवों के नाम गिनाओ जो इन इन्द्रियों के विषय में जान देते हैं ?

न्यायाचार्यअध्यात्मयोगी वर्णीजी ११

श्रीचन्द्र स्कूल से वापिस लौट रहा था। मार्ग में उसे एक योगी दिखाई दिये। उसने योगी के पास जाकर कहा—साधु जी महाराज ! आप कहाँ से पधार रहे हैं ?

साधुजी—वत्स ! पार्श्वनाथ पहाड़ से आ रहा हूँ।

श्रीचन्द्र—महाराज ! आप कहाँ ठहरे हैं ?

साधुजी—अभी चला ही आ रहा हूँ, कहीं भी ठहर जाऊँगा ? यहाँ कोई धर्मशाला है क्या ?

श्रीचन्द्र—महाराज ! आपके साथ कोई समान नहीं है क्या ?

साधुजी—हम लोग पीछी कमण्डलू और एक चद्दर के अतिरिक्त और कोई समान नहीं रखते।

श्रीचन्द्र—तो आप सोते कहाँ होंगे ? विना विस्तर के कैसे सोया जाता होगा ?

साधुजी—हम लोगों की जमीन ही सुन्दर शय्या और हाथ ही बर्तन हैं। न तो हमारी आवश्यक्ताएँ गृहस्थों की तरह चढ़ी बढ़ी होती हैं और न हमको खाने बनाने की ही कोई चिन्ता रहती है।

श्रीचन्द्र—अच्छा महाराज! मेरे साथ चलिये मैं आपको पहले ठहरा दूँ तब अवकाश में बातें करूँगा। इतना कहकर साधुजी को साथ लेकर वह घर पहुँचा और अपने घर के बाहरी कमरे में उन्हें बिठाकर अन्दर चला गया। वहाँ जाकर माँ से बोला, माँ! आज एक ऐसे विचित्र साधु आये हैं कि न तो उनके पास कोई बिछाने को कपड़ा है, न बर्तन है, एक लंगोटी लगाये और एक चद्दर ओढ़े हैं। एक पानी का कमण्डलु और एक पीछी है। गुणमाला झट बाहर के कमरे में श्रीचन्द्र के साथ गई और साधु को देख, हाथ जोड़ कर वन्दना की। साधु ने 'दर्शन विशुद्धिः' कहकर आशीर्वाद दिया।

गुणमाला—महाराज! आपने दर्शन देकर इस घर को पवित्र कर दिया। आप जैसे तपस्वी महात्मा के दर्शन बड़े भाग्य से होते हैं। अभी तो चर्य्या का समय है अतः पास ही के देवालय में पधार कर शुद्धी कीजिये। यहाँ हम लोगों के २०-२५ घर हैं। जो देवालय के पास ही हैं।

साधुजी-बेटी! आज तो चतुर्दशी है हम आज

चर्य्या को न निकलेंगे। हाँ! पास वाले देवालय में ठहरने लायक स्थान है क्या?

गुणमाला-महाराज! यहाँ ही विराजिये।

साधुजी--हम लोग गृहस्थों के घर नहीं ठहरते। इसलिये देवालय में ही कहीं ठहर जावेंगे। गुणमाला साधुजी को लेकर देवालय गई और महराज को ठहरा दिया। जब घर आई तो श्रीचन्द्र ने पूछा, माँ! आपने इनको देवालय में क्यों ठहराया, क्या ये हमारे घर नहीं ठहर सकते थे?

गुणमाला--बेटा! ये ईसरी के महान् सन्त हैं। इनका समाज में बहुत बड़ा आदर है। ये ऐसे स्थान में ही ठहरते हैं जो इनके ज्ञान, ध्यान, तप में बाधक न हो। ये अभी तुझे साधारण साधु से लगे, पर देखना अभी समाचार सुनते ही इनके दर्शनों को भीड़ लग जावेगी।

श्रीचन्द्र--इनका नाम क्या है?

गुणमाला- इनका नाम तो न्यायाचार्य पंडित गणेशप्रसादजी वर्णी है पर अब ये क्षुल्लक हो गये हैं इसलिये इनको लोग वर्णीजी महाराज कहते हैं ये बहुत बड़े ज्ञानी एवं अध्यात्म योगी हैं।

श्रीचन्द्र-माँ। तो मैं एक बार फिर उनके दर्शन कर आऊँ। मैंने तो उन्हें प्रणाम भी नहीं किया, इतना कहकर श्रीचन्द्र देवालय पहुँचा और सन्त के पैर छूकर बोला,

महाराज मैं आप को जानता नहीं था, अतः आपको प्रणाम न कर भारी भूल की।

वर्णीजी-तुम किस कक्षा में पढ़ते हो बच्चे!

श्रीचन्द्र-पाँचवीं कक्षा में।

वर्णीजी देखो बच्चे! तुम्हारा शरीर बड़ा दुर्बल है। थोड़ा व्यायाम किया करो।

श्रीचन्द्र–महाराज! हमारे स्कूल में रोज व्यायाम कराया जाता है। मैं हर रोज व्यायाम करता हूँ। पर आप तो महात्मा हैं कोई ऐसी दवा बताइये, जिससे मेरा स्वास्थ्य सुधर जावे।

वर्णीजी–बच्चे! सबसे उत्तम औषधि मन की शुद्धता है। दूसरी औषधि ब्रह्मचर्य्य की रक्षा है। तीसरी औषधि शुद्ध भोजन है।

श्रीचन्द्र-मन कैसे शुद्ध होता है महाराज!

वर्णीजी-तुम अपने को कभी रोगी मत समझो. सदा वह उत्तम कार्य्य करो जिसमें लोग तुम्हारी तारीफ करें।

श्रीचन्द्र–वे उत्तम कार्य्य क्या क्या हैं महाराज!

वर्णीजी–माता पिता और गुरुजनों को प्रणाम करना, उनकी आज्ञा पालन करना, समय पर उठना, समय पर पढ़ना, समय पर खेलना, खाना, स्नान करना, सदा दूसरों की सेवा करना, अभक्ष्य पदार्थ-जिनमें कीड़े पैदा हो गये हों ऐसे सड़े गले पदार्थ न खाना, झूठ नहीं बोलना, दूसरों की चीजें नहीं चुराना, सात व्यसनों को छोड़ना आदि उत्तम काम हैं।

श्रीचन्द्र–महाराज व्यसन किसे कहते हैं।

वर्णीजी–जिनके करने से मनुष्यों की आदत खराब हो, व्यर्थ जीवों की हिंसा हो, और जीवन भर उन बुरी

आदतों से दुःख उठाना पड़े। तथा जिसके करने से सदा निंदा का पात्र बनना पड़े।

श्रीचन्द्र—महाराज जरा ठहरिये, मैं दौड़कर घरसे पुस्तक उठा लाऊँ। उसमें सात व्यसनों का नाम लिख लूँगा। तब याद रहेगा। इतना कहकर श्रीचन्द्र घर से किताब पेंसिल ले आया और बोला, कहिये महाराज सात व्यसन कौन से हैं।

वर्णीजी :-जूआ खेलन, माँस मद वेश्या व्यसन शिकार।
चोरी पर रमणीरमण सातों व्यसन निवार॥

जुआखेलना, माँसखाना, शराबपीना, वेश्याओं के नाच देखना- आजकल सीनेमा घरों में वेश्याओं का नाच स्वेत-पट पर दिखाया जाता है जिससे बालकों की आदत खराब हो जाती है उन्हें एक ऐसा रोग हो जाता है कि वे पैसा चुरा चुरा कर सीनेमा देखने जाते हैं उनके माता पिता जब पूछते हैं तब झूठ बोलते हैं। सीनेमाघरों में जाने की आदत पड़ जाने से बड़े होने पर पैसे के लिये जुआ खेलने लगते हैं और दाव हाथ लगजाने पर उस मुफ्त के पैसे से शराब, बीड़ी, सिगरेट, गाँजा, अफीम, भाँगपीना सीख जाते हैं। जिससे उनकी आदतें बिगड़ जाती हैं। ऐसे बालक जीवन में कोई अच्छा काम नहीं कर सकते। न तो वे देश-सेवा ही कर सकते हैं न कुटुम्ब-पालन ही। भोजन तो उनका

इतना खराब हो जाता है कि वे माँस अण्डा, आदि तक खाने लग जाते हैं। परस्त्रियों को सदा बुरी निगाह से देखने लग जाते हैं। यही सात व्यसन हैं। हाँ शिकार! का व्यसन रह गया। माँस खाने की आदत पड़ जाने पर मछली मारना, पक्षियों को मारना, बच्चे जल्दी सीख लेते हैं और उन बेचारों की जानें अपने पेट भरने के लिये प्रतिदिन लिया करते हैं। वे, यह नहीं सोचते, कि जैसे हमारी जान हमको प्यारी है वैसी इनकी भी इन्हें होगी। जैसे हमको कोई गोली से मारने तैयार हो जाय, तो हम दुखी होते हैं, वे जीवधारी भी चैतन्य आत्मा हैं इसलिये इनको भी तुम्हारी तरह दुःख होता होगा। अकसर लड़कों की आदत होती है कि तालाब के पास जाकर तालाब में पत्थर फेकने लगते हैं पर पानी में रहने वालों को जब वे पत्थर लगते हैं तो उन्हें उतना ही दुःख होता है जितना तुम्हें थप्पड़ मारने से होता है। इस लिये बच्चे! तुम इन सातों व्यसनों के चक्कर में कभी न पड़ना भगवान् महावीर ने कहा है कि 'जैसे तुमको जीने का अधिकार है, ऐसा ही उन्हें भी जीने का अधिकार है।'

अच्छा अब जाओ हमारे ध्यान का समय हो गया है। फिर शाम को आना।

अभ्यास के लिये प्रश्न

वर्णीजी कौन हैं? वर्णीजी के बारे में तुम क्या जानते हो?

सात व्यसन कौनसे हैं? शिकार क्यों न करना चाहिये? महावीर स्वामी कौन थे? जुआ खेलने से क्या हानि है? चोरी करना क्यों बुरा है? परस्त्री हमारी कौन है? संसार के प्राणियों को हमारी तरह क्या क्या अधिकार हैं? साधु लोग गृहस्थों के मकान में क्यों नहीं ठहरते?

पिता १२

विमलदास--श्री! आज अमर और अमल दोनों ने बारह बजे आने का वायदा किया है। तुम भी उस समय तैयार रहना।

श्रीचन्द्र–पिताजी! बारह तो बज गये।

इतने में ही अमरचन्द्र और अमलचन्द्र दोनों आ गये और विमलदास को प्रणाम करके बोले—आज हमको पाँचों पापों के लक्षण लिखवा दें। ताकि हम उनको याद कर मन में उतार लें।

श्रीचन्द्र पिताजी! हम भी यही चाहते हैं कि आप जो भी बतावें मुझे नोट करा दें।

विमलदास—बहुत अच्छा बच्चो! अच्छा तो लिखो 'असुभादो विणिवित्ती सुभे पवित्तीय जाण चरित्तं' अपने व्यवहारों को इतना साफ रखो, जिससे खोटे काम तुमसे एक भी न हो, तथा तुम्हारे जरिये ऐसे काम हों, जिससे

देश की उन्नति हो, पर साथ में यह जरूर ध्यान रखना होगा, कि इन कामों से हमारी उन्नति हो रही है या नहीं। यदि आप दुनियाँ का काम करते हुए अपनी आदतों को खराब कर लेते हो तो वह तुम्हारा पतन है, उन्नति नहीं। आत्मा की ज्ञानधारा जब तक सुरक्षित रहे तब तक अपनी उन्नति समझो और जहाँ विवेक जाता रहे वहीं अपना पतन समझो। इसी लिये एक विद्वान् ने कहा है कि :—

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः।
किन्नु मे पशुभिस्तुल्यं किन्नु सत्पुरुषैरपि॥

मनुष्यों को प्रतिदिन यह सोचना चाहिये कि मेरा आचार-व्यवहार सभ्य मानव की तरह है, या पशुओं की तरह? यदि हम अपने आचरण को प्रतिदिन देखते रहेंगे, तो हमसे पाँच पापों में से एक भी नहीं होगा।

श्रीचन्द्र—पाँच पापों को परिभाषाएँ और लिखवा दीजिये।

विमलदास—लिखो, पहला पाप हिंसा है

'प्रमत्त योगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा'

प्रमाद के आवेश में अपने या दूसरे जीवों के प्राण शरीर से जुदा कर देना हिंसा है।

श्रीचन्द्र—प्रमाद किसे कहते हैं? और उसका आवेश कैसा होता है?

विमलदास–जो आत्मा की ज्ञानधारा में विकार पैदा कर दे उसे प्रमाद कहते हैं जैसे–गंगा की पवित्र धारा में शहर के मल मूत्रादि गिरने से गंगा के स्वच्छ जल में मल मूत्रादि के अंश मिल जाते हैं पानी का रङ्ग रूप बदल जाता है स्वाद भी बदल जाता है और यदि वह गंगा की धारा कुछ दूर चल कर शुद्ध नहीं हुई है। तो कीड़े सहित उसे पीने से, या गन्दे नालों का पानी पीने से जैसे नाना रोग हो जाते हैं। उसी तरह गंदी विचारधारा से मन रोगी हो जाता है इसी को प्रमाद का आवेश कहते हैं। मान लो, दो सहोदर भाइयों में झगड़ा हो गया, तो वे दोनों क्रोध के आवेश में एक दूसरे को माँ बहिनों की गाली देने लगते हैं। उस समय वे यह भूल जाते हैं कि इसकी माँ ही तो मेरी माँ है। इसे गाली देने पर गाली मेरे ऊपर ही तो पड़ी। यह तो प्रमाद का आवेश हैं। मान लो, एक आदमी को माँस खाने की आदत है उसने एक सुन्दर चिड़िया, हिरण, या खरगोश देखा, उसकी जीभ में पानी आने लगा। अब उसे लोभ कषाय से दबाया और लोभ के आवेश में वह अपनी बन्दूक लेकर उन जीवों के पीछे दौड़ा और पसीने से लथपथ हो गया। यदि उसने किसी जीव को मार गिराया तो समझ लो गढ़ जीत लिया। इसी क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चारों कषायों की वशमें होकर

या द्वेष से किसी को मारा या उसका दिल दुखाया या अपनी हत्या फाँसी लगाकर, या रेल की पटरी के ऊपर सिर रख करली या अपना सिर धुन लिया या अपने ज्ञान दर्शन के स्वरूप के विपरीत अन्य काम स्वपर प्राण पीड़ा का कर लिया तो समझ लो हिंसा हो गई। हिंसा सिर्फ मारने को ही नहीं कहते हैं मन में किसी के मारने, तंग करने या कष्ट देने के विचारों को भी हिंसा कहते हैं।

झूठ–'असदभिधानमनृतम्' जो चीज़ जैसी न हो उसको उसरूप का कहना, अर्थात् किसी ने पूछा क्यों जी तुम पास हो गये ? और एक फेल बालक अपनी निन्दा या अपमान यह के डर से ये कहदे कि हाँ ! मैं पास हो गया। इसी का नाम झूठ है इसमें भी प्रमाद का आवेश होता है। दूसरों की चुगली करना, बुराई करना, झूठी अफवाह फैलाना, झूठा लिखकर देना, अदालतों में झूठी गवाही देना आदि काम कषायों से ही होते हैं। बिना मतलब के पागल ही बका करते हैं। पर जो लड़के बात बात में झूठ बोलते हैं वे या तो पागल हैं या अपराधी हैं। झूठ बोलना कानून की दृष्टि में भी अपराध है।

चोरी–'अदत्ता दानं स्तेयम्', किसी की बिना दी हुई–गिरी, पड़ी, खोई, हुई चीज उठा लेना चोरी है। चोरी

की चीजें मोललेना, बहुमूल्य की वस्तु में अल्पमूल्य की वस्तु मिला देना, किसी को झाँसा देकर ठग लेना, किसी की जब कतर लेना, स्कूल से बच्चों की किताबें चुरा ले जाना, ये सब चोरी है। इसमें लोभादि नाना कषायों का आवेश होता है।

स्वदारसन्तोष—अपनी स्त्री को छोड़ कर संसार की स्त्रियों को माता-बहिन समझना चाहिये। इस संसार में सदाचार एक महान् गुण है। गुण्डों की कीमत किसी दुनियाँ में नहीं है। सारे धर्म व्यभिचारी की निन्दा करते हैं। कोई भला आदमी अपने परम मित्र के आचरण में भी सन्देह होने पर घरमें नहीं घुसने देता।

पाँचवाँ पाप है—परिग्रह का जोड़ना।

मूर्च्छा-परिग्रहः। संसार के पदार्थों में ममता रूप विचारों का नाम मूर्च्छा है और इस मूर्च्छा के आवेश में संसार के पदार्थों को बटोर कर अपना मानना परिग्रह है। आज हम लोग संसार के घर, बाग, बगीचा, गाय, भैंस, धन-धान्य, दासी-दास, कपड़े, बर्तन, माता-पिता भाई-बन्धुओं में इतना प्रेम दिखाते हैं, यह मूर्च्छा का ही परिणाम है। जरा सोचो तो, तुम्हारे मर जाने पर ये क्या तुम्हार रह जावेंगे ? यदि नहीं, तो फिर इनमें तीव्र लालसा या, प्रेम नहीं करना चाहिये।

श्रीचन्द्र—पिताजी! क्या इसका यह आशय नहीं है कि हम इनसे नाता तोड़ भभूत रमा लें?

विमलदास—नहीं बेटा! गृहस्थों के लिये यह उचित मार्ग नहीं है। जब तक संसार से नाता हमें बनाये रखना है तब तक उन पदार्थों से हमको नाता बनाये रखने के लिये उन आवश्यक पदार्थों का परिमाण भी बना लेना चाहिये, कि हम इस जीवन में अपने लिये इतने मकान, इतनी गाय भैंसे, इतना रुपया पैसा आदि रखेंगे। फालतू नहीं रखेंगे जिनको न तो हम सम्हाल ही कर सकते हैं न जिन्हें सुरक्षित ही रख सकते हैं। परिग्रह परिमित रखने का, एक ही आशय है कि हम संसार की माया-ममता में उलझ कर अपने को न भूल जावें। मनुष्य शरीर इस जीव को हर समय नहीं मिलता। पूर्व जन्म में बड़ी साधना की थी तब यह मानव शरीर मिला है। इस शरीर से हमको पहला काम अपने ज्ञान का विकास करना है। ज्ञान-विवेक को कहते हैं। जो मानव अपनी भलाई बुराई नहीं सोच पाता, तथा अपने गुण दोषों की परीक्षा नहीं कर सकता, वह बड़ा विद्वान् होकर भी मूर्ख है। ज्ञान का काम बुराइयों से बचाकर भलाइयों की ओर ले जाना है। इन पाँचों पापों में बुराइयाँ ही बुराइयाँ हैं। भलाई

एक भी नहीं है । अतः इन पाँचों पापों से प्रत्येक बालक को बाल्यजीवन से ही बचाते रहना चाहिये ।

अभ्यास के लिये प्रश्न

पाँच पापों के नाम लिखो ? अहिंसा किसे कहते हैं ? मोहन ने सोहन की जेब में से पैसे निकाल लिये, बताओ कौन पाप किया ? परिग्रह परिमाण क्यों आवश्यक है ? पाँचों पापों के लक्षण लिखो ? हरी ने एक पत्र अपनी बीमारी का अपने पिता को लिखकर १०) मँगवालिये और सीनेमा देखने में खर्च कर दिये, कौनसा पाप किया ? मूर्च्छा का क्या अर्थ है ?

गुणमाला और अमलचन्द्र १२

अमलचंद्र— मौसीजी ! प्रणाम,

गुणमाला–आओ बेटा ! चिरंजीवी, होओ । आज तुम ठीक समय पर आए हो । थोड़ा भोजन कर लो, फिर हम लोग बैठ कर बातें करेंगे ।

अमलचन्द्र–मौसीजी ! मैं अभी खाकर ही घर से चला हूँ । मैंने श्रीचन्द्र से वायदा किया था कि अगले रविवार को मैं १० बजे ही आ जाऊँगा । चलो श्री ! तुम्हारे कमरे में चलें । जब तक मौसीजी काम से अवकाश पाये जाती हैं ।

गुणमाला–अमल ! आज मुझे मेरी ननद ने बुलाया है गुणधर आता ही होगा, आज तो अमरचन्द्र भी आने वाला था, क्यों श्रीचन्द्र ! अमर कब तक आवेगा ।

श्रीचन्द्र—वह देखो माँ! अमरचन्द्र और गुणधर भैय्या साथ साथ ही आ रहे हैं।

दोनों ने आकर गुणमाला को प्रणाम किया, श्रीचन्द्र ने भी सबको प्रणाम कर अपने कमरे में ही सबको ले गया। आज वहीं पाठशाला लगाने का उसका इरादा था। सब लोग कमरे में बैठ कर श्रीचन्द्र की रुचि पूर्ण सजावट और सादगी देख कर बड़े खुश हुए।

गुणमाला—बच्चो! हमने उस दिन वायदा किया था, कि पाँच परमेष्ठी की उपासना कैसे की जाती है। इसको बताऊँगी। अतः आज थोड़ा सा ही बता सकूँगी।

गुणधर—हाँ मामी! आपको हमारी माँ ने जल्दी बुला लाने को कहा है।

गुणमाला—मैं जानती हूँ। अच्छा सुनो! अरहंत भगवान् को ही हम लोग अधिकतर पूजते हैं उनके गुण स्मरण करने के लिये उनकी ही प्रतिमा बनाते हैं। इस क्रिया का तात्पर्य्य यह है कि :—

यो यस्य गुणलब्ध्यर्थी स तं वंद्यमानो दृष्टः।

अर्थात् हम लोग जिससे जो कुछ सीखना चाहते हैं उसकी वन्दना सेवा या सत्कार करते हैं। जैसे हमको रोग है तो वैद्यराज, डाक्टर या सिविल सर्जन के पास जावेंगे, उनकी खुशामद करेंगे। यदि कर्ज लेना है तो सेठ साहूकारों का दरवाजा खटखटायेंगे। यदि पढ़ना है तो गुरुजी, या मास्टर

साहब के यहाँ जावेंगे और उनसे अपनी दुःख गाथा करुणा जनक शब्दों में कहेंगे। इसी तरह हमको अपने स्वरूप को समझना है, तथा संसार के बार बार जन्म-मरण के रोग को मिटाना है इसलिये हमको ऐसा आदर्श चाहिये।

जिसने अपने परम पुरुषार्थ से अपने को पूर्ण स्वतंत्र कर अनन्त काल टिकने वाली सुख शान्ति पा ली हो। यदि दर्पण मैला होगा तो हमारे मुख में लगी कालिमा या बालों के अस्त-व्यस्त रूप को नहीं दिखा सकता, इसलिये जैसे हमको साफ दर्पण की जरुरत होती है इसी तरह हमारे आदर्श अरहंत भगवान् हैं, उन्होंने अपना पूर्ण विकास कर संसार के सभी पदार्थों को एक साथ जान लिया है। अतः हमारे लिये संसार के पदार्थों का गुण धर्म समझाया था। यद्यपि आज वे उपस्थित नहीं हैं पर उनके बताये गुणधर्मों को बताने वाले शास्त्र वर्तमान हैं। उनसे हमारा सीधा लाभ होता है। हमारा जो भला करे, सुमार्ग पर लगावे, हमारी बुराइयाँ हमें समझावे वही हमारा इष्ट-हितकारी है। अरहंत से संसार के प्राणियों को, आत्मा की पूर्ण स्वतंत्रता का साधन मार्ग मिला है, इसलिये हम उनकी प्रतिमा बना कर उसे नमस्कार करते हैं। उसके सामने अपने कष्टों का वर्णन करते हैं और यह प्रतिदिन उनके सामने इच्छा प्रगट करते हैं कि भगवान्!

राज, राणा, छत्रपति, हाथिन के असवार ।
मरना सब को एक दिन, अपनी अपनी बार ।
दल, बल, देवी, देवता, माता पिता परिवार ।
मरती बिरियाँ जीवको, कोई न राखन हार ॥
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान ।
कहुँ न सुख संसार में सब जग देखो छान ॥
आप अकेला अवतरे, मरे अकेलौ होय ।
यूँ कबहूँ इस जीवको, साथी सगा न कोय ॥
जहाँ देह अपनी नहीं तहाँ न अपना कोय ।
घर सम्पति परप्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥
दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह ।
भीतर या सम जगत में, अवर नहीं घिन गेह ॥
जगवासी घूमै सदा, मोहनींद के जोर ।
सरवस लूटें सुध नहीं, कर्मचोर चहुँ ओर ॥
मोहनींद जब उपशमै, सतगुरु देय जगाय ।
कर्मचोर आवतरुकै, तब कछु बने उपाय ॥
ज्ञान दीप तप तेल भर, घर सोधै भ्रम छोर ।
या विध बिन निकसै नहीं बैठे पूरब चोर ॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार ।
प्रबल पञ्च इन्द्री विजय, धार निर्जरा सार ॥
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान ।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत है बिन ज्ञान ॥
धनकन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान ।
दुर्लभ है संसार में, एक यथारथ ज्ञान ॥
जाँचे सुरुतरु देय सुख, चिंतत चिंतारैन ।
बिन जाँचे बिन चिन्तवे, धर्म सकल सुख दैन ॥

श्रीचन्द्र—माँ! आज तुमने हमको वह ज्ञान दिया कि जिसे हम जीवन भर नहीं भूला सकते।

गुणधर—मामीजी! सचमुच तुमने संसार का रेखा चित्र मेरे सामने रख दिया, मैं भी अब से भगवान् के सामने यही प्रार्थना प्रतिदिन पढ़ूँगा।

अमलचन्द्र—मौसीजी! माँताजी ठीक कहती थीं आज तो आपने धर्म का निचोड़ ही हमारे सामने रख दिया।

अमरचन्द्र-भाई श्रीचन्द्र! तुम्हारी माता इतना अच्छा वस्तु स्वरूप समझाती हैं यह तुमने हमको कभी नहीं बताया। मैं भी तुम्हारी तरह प्रति दिन सुनता।

गुणमाला—एक बात और नोट कर लो। अरहंत भगवान् का एक छोटा रेखाचित्र तुम्हारे सामने और रखती हूं।

मोक्षमार्गस्य नेतारम् भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारम् विश्व तत्त्वानाम् वन्दे तद्गुण लब्धये॥

अभ्यास के लिये प्रश्न

अरहंत किसे कहते हैं? अरहंत की मूर्ति क्यों पूजते हैं? संसार का स्वरूप क्या है? तुम संसार में क्यों घूमते हो? गुरुओं ने तुम्हारा क्या उपकार किया? संसार में सबसे कठिन क्या है? मोक्षमार्ग क्या है? सर्वज्ञ किसे कहते हैं?